



“दरिया-सागर” में चित्रित समाज

(अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की एम० फिल०
उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)
1986

निर्देशक

डा० मुहम्मद अहसन

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०

रीडर, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़-202001

प्रस्तुत-कर्ता

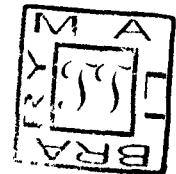
मसरूर अली खाँ

एम०ए०, सी०लिब०

हिन्दी विभाग

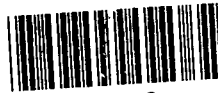
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़-202001

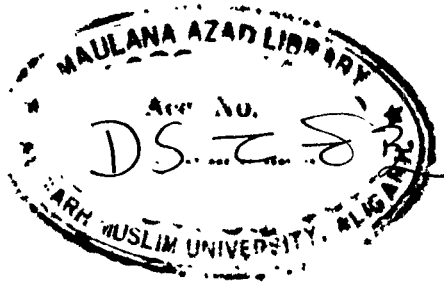


Fed In Computer

CHECKED 3002



DS893



16 MAY 1987

आत्मनिवेदन एवं आभार

हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि संत-साहित्य की मनोरम प्रवृत्तियों के प्रति अवेतन में विचार विद्यमान थे । अतीवदुःखित विरवविनाश में प्रवेश के परचातु संत-साहित्य के अध्ययन से अवेतन से यह विचार वेतन को प्राप्त हुए । वह चिन्तारी जो अवेतन की राह के द्वार में खिंची थी , संत-साहित्य के अध्ययन से वेतनावस्था में आयी ।

विभाग में प्रवेश के परचातु से ही मेरी श्रद्धा गुब्बर ठाँ० मुहम्मद अहसन साहब के प्रति अत्यधिक रही । स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के परचातु मेने गुब्बर से शोधकार्य हेतु अपनी शिषि प्रकट की । कारण यह था कि विभाग में आपकी श्रद्धा संत-साहित्य के प्रमुख विद्वानों में होती है । इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आप विभाग के इस विषय पर अपने शोध का सफल निर्देशन कर रहे थे । संतों में मेरी शिषि के परिणामस्वरूप आने विषय की मौलिकता को दृष्टि में रखते हुए मुझे दरिया साहब [बिहारवाले] पर शोधकार्य करने का निर्देश दिया और "दरिया सागर में चित्रित समाज" विषय पर एम० फिल० करने की पूर्ण अनुमति प्रदान की । अपनी पूर्व परम्परा एवं प्रकृति के अनुसार आने विषय चयन से लेकर शोधकार्य की पूर्ण आहुति तक पग-पग पर सस्नेह मार्ग-निर्देशन किया । आपकी शोध रचनाओं एवं लेखों का अध्ययन भी मेरे शोधकार्य का मील का पत्थर बन गया । आपके निर्देशन में मैंने

जिस सुन्दरता एवं रुचि से अपने शोध-कार्य को पूर्ण किया उसका श्रेय गुरुवर डॉ० मुहम्मद अहसन साहब को है। इनके प्रति कृतज्ञता-जापन करना मेरा परम धर्म है। स्नेहमयी गुल्माता श्रीमती सादिका अहसन के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनका स्नेहासिक्त व्यवहार भी इ संत दरिया साहब [बिहारवाले] की मानवतावादी दृष्टि को ध्यान में रखकर शोध-कार्य करने का प्रेरणा-स्रोत बन गया। डॉ० शिवकुमार शाण्डिल्य जी के सतत साहित्यिक परामर्शों एवं उपलब्ध कराए गए साहित्य से शोध-कार्य में मुझे जो गति मिली उसके प्रति सहृदय आभार व्यक्त करना मेरा पुनीत कर्तव्य है। प्रो० विश्वनाथ शुक्ल और डॉ० गैदातात शर्मा के प्रति भी आभार व्यक्त करना मेरा कर्तव्य है।

विभागाध्यक्ष प्रो० नजीर मुहम्मद साहब के पूर्ण सहयोग के प्रति भी आभारी हूँ। उन्होंने विभागीय समस्याओं के समाधान में पूर्ण सहयोग दिया।

मैं विभाग के सभी गुरुजनों के प्रति आभारी हूँ जिनके आशीर्वाद का परिणाम प्रस्तुत शोध-ग्रंथ है।

अपने अभिभावक रियाजुर रहमान, असिस्टेंट लाइब्रेरियन, मौलाना आजाद पुस्तकालय, अलीगढ़ तथा बहिन निगहत रियाज ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में प्रवेश से अबतक मेरे साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार किया।

इन्की छत्रछाया में सुखद समय व्यतीत हुआ । इन महानुभावों के स्नेहिल व्यवहार एवं प्रेममयी अंकुश के प्रति मेरे मन में जो भावनाएँ हैं, वैचारिक धरातल पर उनका रसास्वादम किया जा सकता है । लेकिन इन भावनाओं को शब्दबद्ध करने में असमर्थ है । अंतिम साँस तक इनके प्रति आभार व्यक्त करने की बात अतिरिक्त नहीं होगी ।

नसरतीनअख्तर ने मुझे शोधकार्य में संलग्न रहने का परामर्श दिया । इन्होंने साहित्यिक एवं सामाजिक मानसिक धरातल पर पूर्ण सहयोग प्रदान किया । वस्तुतः इन्की सत्सु सद्भावनाएँ मेरे शोधकार्य की प्रेरणास्रोत बनीं । इनके पूर्ण सहयोग से प्रति सदैव कृतज्ञ रहूँगा ।

मुझे अपने मित्रों सय्यद अहमद जुबैरी, वली हैदर, लकीर अहमद, मु० इम्तियाज खाँ, एहसानउल्ला फरीदी, मु० खालिद बिन यूकूफ खाँ और जावेद फजली आदि से भी सहयोग मिला । इनके प्रति आभारी हूँ । विभाग के शोधछात्र एवं प्रिय मित्र मु० इतियाज नवेद "गुन्नीरी" के पूर्ण सहयोग के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा परम एवं पुनीत कर्तव्य है । इनके प्रति मन में जो भावनाएँ हैं उन्हें लिपिबद्ध करना मेरे बस की बात नहीं ।

मौलाना आबाद पुस्तकालय के कर्मधारियों, छासतौर पर राज़िम भाई एवं शिवदत्तशर्मा के प्रति आभारी हूँ । मैं असलम और यूसुफ सईद खाँ [हुन्नम] साहब के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ ।

स्व० पिताजी - शराफत अली खाँ, स्नेह एवं प्रेम की

देवी माता जी-असगरी बेगम, साता बिल्कीस बेगम, प्रियवर भाई मुहम्मद अली खाँ
 [हंसीनियर], मुसुर अली खाँ, मुहम्मद अली खाँ [एडवोकेट] और बहनो-स्कईया
 बेगम, सहनाज़ और साहीना आदि की प्रबल इच्छाओं, मनोकामनाओं, आकांक्षाओं
 और आशीर्वादों के परिणामस्वरूप इस शोधग्रन्थ का प्रणयन हुआ । इन परिवार
 बनों ने बग-बग पर मुझे जो सहयोग दिया उसके प्रति शब्दों में आभार व्यक्त
 करना अत्यंत कठिन है क्योंकि अस्य हार्दिक भावनाओं को व्यक्त करना कठिन
 तो है ही, साथ में उचित भी नहीं । इन महानुभावों के प्रति मन में जो आदर
 'हेउनका वास मनःस्थित है ना कि कागज पर लिखे पंद शब्द ।

इस शोधग्रन्थ के साथ-साथ स्व० पिताजी धरायत अली
 खाँ और बहिन स्व० स्कईया बेगम की दुआएँ और सपने साकार हो रहे हैं । आज
 इनकी आत्मा स्वर्गलोक में अवश्य प्रसन्न होगी । कात, आज वे हमारे मध्य होते
 तो इस प्रसन्नता में बार चाँद लग जाते ।

हिन्दी साहित्य बंगलू के उन विद्वानों को नमन जिनके
 साहित्य में एवं सतत साहित्यिक परामर्शों से शोध की सम्पन्नता में सहयोग
 मिला ।

हिन्दी विभाग,

M. A. Khan

। मुसुर अली खाँ ।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
 अलीगढ़ - 202 001

विषय-सूची

आत्म निवेदन एवं आभार

विषय सूची

प्रथम अध्याय : भूमिका

०१

विषय पर शोध की आवश्यकता

शोध की उपयोगिता

विषय पर पूर्वकृत शोध-कार्य

विषय की मौलिकता

द्वितीय अध्याय: निर्गुण संत-परम्परा और दरिया साहब । बिहार वाले। 9

।अ। निर्गुण शब्द

।आ। सगुण शब्द

।ई। निर्गुण और सगुण ।साम्य और वैषम्य।

।ई। "संत" शब्द

।उ। संतों द्वारा प्रयुक्त संत शब्द

।ऊ। संत-साहित्य का समय-निर्धारण

I. प्रारंभिक युग

II. मध्य युग ।पूर्वार्द्ध।

III. मध्ययुग ।उत्तरार्द्ध।

I . आधुनिक युग

।ए। संतों की परम्परा

।रे। निर्गुण संत-परम्परा और दरिया साहब । बिहारवाले।

चतुर्थ अध्याय : दरिया साहब की जीवन-परिचय

45

।क। जन्म-समय

।ख। जन्म-स्थान

।ग। जाति

।घ। गुरु

।ङ.। शिक्षा तथा विवाह

।च। शिष्य-परम्परा

।छ। रचनाएँ

चतुर्थ अध्याय : दरिया सागर में विभित्त समाज

77

। अ। समाज शब्द

।आ। संतों का सामाजिक दृष्टिकोण

।इ। दरिया साहब के समय का समाज

I. उच्च वर्गीय समाज

II. मध्यवर्गीय समाज

III. निम्नवर्गीय समाज

पंचम अध्याय : "दरिया सागर" में दरिया साहब का सामाजिक दृष्टिकोण 95

। अ। मानवतावादी दृष्टिकोण और समाज

। आ। बाह्याउम्बरों और दूजाछात संबंधी दृष्टिकोण

। इ। दरिया सागर में परम सत्ता एवं ईश्वर का स्वरूप

। ई। दरिया सागर में वर्णित धार्मिक विचार

। उ। दरिया सागर में जीवन-व्यवहारमूलक प्रतीक

षष्ठ अध्याय : उपसंहार

120

संदर्भ एवं सहायक ग्रंथी-सूची

125

प्रथम अध्याय : भूमिका

विषय पर शोध की आवश्यकता

शोध की उपयोगिता

विषय पर पूर्वकृत शोध-कार्य/ शोध-पहलवन-प्रणाली

विषय की मौलिकता

प्रथम अध्याय

भूमिका

संत-साहित्य अत्यंत विज्ञात और व्यापक-गहन अनुभूतियों का साहित्य है । प्रस्तुत अध्ययन में संत-साहित्य का व्यापक अर्थ न लेकर हिन्दी साहित्य के निर्गुण संत कवियों द्वारा हिन्दी और उसकी उब भाषाओं में रचित साहित्य से है । आचार्य मुक्त ने भी संत-साहित्य से इसी साहित्य की ओर संकेत दिया है । आचार्य मुक्त ने निर्गुण धारा के ज्ञानाश्रयी कवियों को संत कवि की संज्ञा से अभिहित किया है ।

संत कवियों में कबीरदास के विचारों से समता रखनेवाले पूर्ववर्ती तथा ^{कवियों को} परवर्ती सम्मिलित किया जाता है । यह कहना यहाँ समीचीन है कि इस साहित्य में भक्ति कात के सगुण मार्गी और प्रेम मार्गी कवियों की रचनाओं को समाहित नहीं किया जाता । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन में प्रेम मार्गी निर्गुण कवि और राम तथा कृष्णमार्गी सगुण कवियों की कृतियों पर विचार नहीं किया गया है । आचार्य मुक्त परवर्ती आचार्यों ने भी संत साहित्य को इन्होंने उहाँ में स्वीकार किया है ।

महामानव संतों के व्यक्तित्व और कृतित्व का प्रभाव कालातीत होता है । संत-साहित्य ने मानव और संपूर्ण जातियता को जो प्रेरणा दी है , उससे राष्ट्रियता की जो तहर प्रवाहित हुई है उसने युगीन और परवर्ती साहित्य पर

अपनी श्रमिट छाप छोड़ी है ।

संत-साहित्य पर अभी तक जितना भी कार्य हुआ है उसको देखते हुए ऐसा लगता है कि उसकी जवरी सतह को छूकर ही समीक्षकों एवं साहित्यकारों ने अपने कार्य की इतिथी मान ली है । सोलहवीं सदी के संत-कवियों के संदर्भ में तो यह बात और भी अधिक लागू होती है । इस काल के हस्त लिखित ग्रंथों का लगभग अभाव सा है । जो कुछ मिलता है उसे प्रामाणिक मानने में आपत्तियाँ उठाने जाती है । प्रकाशित साहित्य तो इतना कम है कि वह छुट-छुट ग्रंथों के रूप में छितरा-छितरा मिलता है ।

साहित्य समीक्षकों की दृष्टि एकांगी या पूर्वाग्रहयुक्त रही है । समीक्षा की अभी तक गहन पद्धति का अनुसरण न करके व्यापक सर्वेक्षण पद्धति को अपनाया जाता रहा है । विद्वान् समीक्षक अभी तक पारंपार्य समीक्षकों या पूर्व निर्धारित समीक्षा मानदंडों से जागे नहीं बढ़ पाए हैं । ज्ञान की अपनी सीमाओं के कारण उरबी फारसी के ग्रंथों का हिन्दी में मनमाना लिप्यंतरण एवं अनुवाद हुआ है । आपसी प्रतीक्षा का दौर"जहाँ स्पं जहाँ ध्वनि को भी कहीं-कहीं मात कर जाता है ।

मेरे प्रस्तुत अध्ययन में समीक्षा के परम्परागत मानदंडों के आधार पर अपनी बुद्धि एवं अध्ययन की सीमाओं के आधार पर कुछ नई दृष्टि देने का प्रयास किया है । मुझे विश्वास है कि संत-साहित्य को समझने-पढ़ने में यह अपना

कुछ योग दान अवश्य कर सकेगा ।

विषय पर शोध की आवश्यकता

संत-साहित्य अपनी विपुल संपदा के लिए प्रख्यात है । इससाहित्य में जीवन की सूक्ष्मतम अनुभूतियाँ देखने को मिलती हैं । संतों ने जीवन की कठिनाइयों को देखा । समाज की संपूर्ण विभंगतियों से टकराकर , समाज की बुराइयों को देख परख कर इसे नई दिशा देने का प्रयास किया । संतों के इस सामाजिक व्यक्तित्व ने सदैव नई एवं सुखद दिशा दी है ।

कुछ आलोचक-समीक्षक कभी-कभी यह भ्रंत धारणा बना बैठते हैं कि संतों ने समाज से पलायन किया था । संतों ने समाज से नहीं समाज की विभंगतियों से पलायन अवश्य किया था और उसको दूर करने के लिए कठोर साधना की थी । उनकी सिद्ध बाणी का प्रभाव बाद में सभी पर हुआ था ।

संत समाज से कटकर भी समाज से आंतरिक रूप से जुड़ा रहता है । या यों कहिए कि संत अपने आप में एक संपूर्ण समाज ही होता है ।

मध्ययुगीन संतों , विशेषकर निर्गुण संतों की परंपरा में दरिया साहब बिहारवाले का नाम उल्लेखनीय है । उन्होंने तात्कालिक समाज को मानसिक धरातल पर जिया था और समाज को नए आदर्श प्रदान करने का प्रयास किया था । उनकी कृति "दरिया सागर" का " भिन्नित समाज" की दृष्टि से अध्ययन अपने आप में महत्व पूर्ण है ।

विषय पर पूर्वकृत शोध-कार्य

संत-साहित्य में कबीर को लेकर अनेक शोध-कार्य किए गए हैं । इनके बाद सूर, तुलसी, जायसी आदि सगुण कवियों पर भी अनेक कार्य किए गए हैं । निर्गुण संतों को लेकर उपायक पत्रक पर कार्य अवश्य किया गया है किन्तु किसी एक संत-कवि की कृतियों को लेकर शोध-कार्य बहुत कम हुए हैं । पूरे संत-काव्य पर बिम्ब-विधान , प्रतीक-विधान एवं रस-तंद्र-अलंकार आदि को लेकर या कभी-कभी दार्शनिकता को लेकर अवश्य कुछ महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं किन्तु उस उपायक पत्रक में किसी एक संत-कवि का मूल्यांकन नहीं हो पाता ।

संत दरिया साहब [बिहारवाले] की ओर शोध-कार्य की दृष्टि से अभी तक किसी भी शोधार्थी कार्य नहीं किया है । डा० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने दरिया ग्रंथावली का संपादन किया । यह बिहार राज्य भाषा, पटना से 1962 में प्रकाशित हुई । तभी से इस ओर हिन्दी के समीक्षकों का ध्यान गया । दरिया साहब [बिहारवाले] को लेकर भी संत-साहित्य में स्थान-स्थान पर विवेक किया गया । किन्तु दरिया साहब की कृति दरिया सागर पर सामाजिक दृष्टि से अभी तक विचार नहीं किया गया । इस कृति पर सामाजिक दृष्टिकोण से विचार करना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि यह स्पष्ट प्रतिपादित गया जा सके कि संत दरिया साहब [बिहारवाले] भी अन्य संतों की ही भाँति सामाजिक संगतियों-विसंगतियों से पूर्णतः परिरक्षित थे और वे एक स्वस्थ समाज

का निर्माण करना चाहते थे ।

इस विचार-धारा से प्रेरित होकर मैंने इस दिशा में कार्य करने का विचार किया । अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ में हिन्दी विभाग के संत-साहित्य के अधिकारी विद्वान् डॉ० मुहम्मद अहसन साहब ने भी मुझे इस विषय पर शोध-कार्य करने की अनुमति प्रदान की ।

शोध-पल्लवन-प्रणाली

प्रस्तुत अध्ययन में शोध-कार्य से संबंधित निर्धारित वैज्ञानिक मानदंडों को अपनाया गया है । विषय-विवेचन और विषय-पल्लवन में अवश्य मौलिक दृष्टिकोण अपनाया गया है । यह विवेचन कुछ दृष्टियों से परम्परा से हट गया है किन्तु अवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता ।

विषय को छह अध्यायों — भूमिका, निर्गुण संत-परंपरा और दरिया साहब [बिहारवाले] , दरिया साहब का जीवन परिचय, दरिया सागर में चित्रित समाज, "दरिया सागर" में दरिया साहब का सामाजिक दृष्टिकोण तथा उपसंहार — में विभक्त किया गया है । प्रथम तीन अध्याय विषय के पल्लवन के लिए नितान्त आवश्यक थे इसी कारण इन्हें प्रस्तुत अध्ययन में स्थान दिया गया । संत-परम्परा और दरिया साहब के जीवन-परिचय के बिना यह अध्ययन पूर्ण नहीं हो पाता इसी लिए इनपर भी विचार किया गया है । इस प्रकार के अध्ययन से विवेच्य कवि के विषय में विचार करना आसान एवं वैज्ञानिक हो जाता है ।

चतुर्थ अध्याय में दरिया साहब के उच्च, मध्य एवं निम्नवर्गीय समाज की सामाजिक परम्पराओं एवं मानसिकताओं को समझने-परखने का प्रयास किया गया है। अध्ययन में एम०फिल् की सीमाओं के कारण समास पद्धति को अपनाया गया है। इसी कारण कहींकहीं मात्र संकेत देकर अपने कार्य को सम्पन्न किया गया है। पंचम अध्याय में दरिया साहब के मानवतावादी दृष्टिकोण, बाह्य जादूम्बरों और हुआछात संबंधी दृष्टिकोण, परमसत्ता एवं ईश्वर संबंधी दृष्टिकोण, एवं धार्मिक दृष्टिकोण के साथ-साथ जीवन-व्यवहामूलक प्रतीकों पर भी विचार किया गया है। प्रतीकों की दृष्टि से विचार करना इसलिए आवश्यक था क्योंकि संतों ने अपने विवेचन में सदैव जीवन व्यवहार से प्रतीकों का ब्यन किया और उन्हें आध्यात्मिक मानसिकता दी।

षष्ठ अध्याय में शोध-कार्य की उपसन्धियों का मूल्यांकन किया गया है।

अंत में संदर्भ एवं सहायक ग्रंथों की प्रामाणिक सुची दी गई है। कुछ कृतिप्रां संक्षिप्त रूप में ही उपलब्ध हो सकी उनका संक्षेप यथा स्थान कर दिया गया है।

विषय की मौलिकता

विषय, ऐसा कि अगर विवेचित किया गया है इस दृष्टि से मौलिक है कि संतों की मानसिकता एवं सामाजिक दृष्टि को समझने-परखने में यह अपना

सर्जनात्मक योगदान कर सकेगा ।

संत-साहित्य को आज की परिस्थितियों में सामाजिक दृष्टि से समझना अत्यंत आवश्यक है । इस प्रकार के अध्ययन से आज के समाज में व्याप्त सांप्रदायिक भावना पर नियंत्रण किया जा सकता है। आज यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि जब समाज का दिशा-निर्धारक संत किसी संप्रदाय से जुड़कर नहीं चलता तो फिर उसका नाम लेकर उसे बदनाम करना कितना विघटनकारी हो सकता है। कबीर, नानक, रेदास, दादू हों या दरिया साहब, बिहारवाले, ये काल-अवधि निरपेक्ष संत हैं और इनकी भावनाओं को आधार मानकर चलनेवाला समाज सदैव आध्यात्मिक प्रगति करेगा ऐसा अध्येता का विश्वास है ।

अध्ययन की अपनी सीमाएँ होती हैं । अध्ययन जैसा कुछ बन पड़ा है उसे हिन्दी साहित्य के विद्वानों के सम्मुख इस आशा से प्रस्तुत कर रहा हूँ कि यह उनका आशीर्वाद पा सकेगा । अध्येता को इतना विश्वास अवश्य है कि यह अध्ययन इस दिशा में सर्जनात्मक योगदान कर सकेगा ।

द्वितीय अध्याय :

" निर्गुण सन्त परम्परा और दरिया साहब [बिहार वाले] "

- [1] निर्गुण शब्द ।
- [2] सगुण शब्द ।
- [3] निर्गुण और सगुण [साम्य एवं वैषम्य] ।
- [4] " संत " शब्द ।
- [5] संतों द्वारा प्रयुक्त " संत " शब्द ।
- [6] संत - साहित्य का समय - निर्धारण :
 1. प्रारंभिक युग [सं० 1200 से सं० 1550 तक]
 2. मध्य युग [पूर्वार्ध] [सं० 1550 से सं० 1700 तक]
 3. मध्य युग [उत्तरार्ध] [सं० 1700 से सं० 1850 ई० तक]
 4. आधुनिक युग [सं० 1850 ई० से आज तक]
- [7] संतों की परम्पराएँ
- [8] निर्गुण संत परम्परा और दरिया साहब [बिहार वाले] ।

द्वितीय अध्याय :

निर्गुण सन्त परम्परा और दरिया साहब [बिहार वाले]

जब भी हम भक्तिकाल के निर्गुण सम्प्रदाय की बात करते हैं तो स्वतः ही संत , साधकों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित हो जाता है । हिन्दी - साहित्य की भक्तिधारा के निर्गुण सम्प्रदाय के अंतर्गत निर्गुण सन्तों द्वारा निर्गुण शब्द का प्रयोग स्थान -स्थान पर दृष्टिगोचर होता है । "निर्गुण" शब्द भक्तिकाल पर शोध करने वाले महानुभावों की विवेचना का विषय रहा है ।

निर्गुण सम्प्रदाय के अंतर्गत उन्हीं संतों को लिया जाता है जिनका व्यक्तित्व किन्हीं विशेष विकृतियों , विविध - विधानों , अंधविश्वासों और मिथ्याचारों से क्लेशित नहीं हुआ है । इस दृष्टि से निम्नलिखित कवि ही महत्वपूर्ण हैं :

कबीरदास , रघुदास , नामक , रेदास , दादू , रज्जब , सुंदरदास , गरीबदास , पारी साहब , बुत्ता साहब , जगजीवन साहब , गुलाब साहब , भीठा साहब , दरिया साहब [बिहार वाले] , मलुक साहब , धरनदास , दयाबाई , सहजोबाई और तुलसी साहब आदि ।

सारगृहिता इन संतों की सारभूत विशेषता थी । इन संतों ने प्रचलित धर्मों , दार्शनिक विचारधाराओं , साधु - सम्प्रदायों और साधनाओं को परखा, अपने अनुभव के द्वारा आत्मसात् कर लिया तथा उन्हें अपनी प्रतिभा के सहि में दृष्टकर नया रूप दे दिया । उन्हें असत्ता और मिथ्या से पूजा थी । वे सत्य के उपासक थे । यही कारण था कि उन्हें जहाँ कहीं मिथ्या तत्व दिखाई दिए उन्होंने उनका छटकर विरोध किया । निर्गुणिया संत निर्गुणोपासक थे । संत - दानियों में "निर्गुण" शब्द अनेक अर्थों का वर्णन है। मुख्य रूप से इसका प्रयोग तैत्तिरीय ब्रह्मण्य , बृहदारण्यक ब्रह्मण्य के लिए हुआ है । आगे "निर्गुण" शब्द पर विचार किया गया है ।

1.1.1 निर्गुण शब्द

" निर्गुण " शब्द अपने पारिभाषिक रूप में सत्त्वादि गुणों से रहित था । उनसे परे समझी जाने वाली किसी ऐसी अनिर्वचनीय सत्ता का बोधक है जिसे बहुधा परम तत्व , परमात्मा अथवा ब्रह्म जैसी संज्ञाओं द्वारा अभिविष्ट किया जाता है।"¹

आध्यात्मिक दृष्टि से ब्रह्म निर्गुण है । उस पर जीव या जगत् का कोई भी गुण आरोपित नहीं किया जा सकता । ऋकुराचार्य ने श्रुति वचनों के आधार पर प्रमाणित किया है कि दिक्काल से अवर्ण्यवित्त , अमृत , अनादि , स्वतंत्र , अलंघ्य , सर्वव्यापी तथा निर्गुण एक ऐसा ऐक्येक तत्व विश्व की जड़ में है जैसे :

" इदम् सर्वमदययात्मा "²

1.1.1 डॉ० जे० आठकर : हिन्दी निर्गुण काव्य का प्रारंभ और नामदेव की हिन्दी कविता , पृ० 26

1.2.1 पृ० 2.4.7 [7.1.1]

निर्गुण शब्द स्वैतारवेत रोपनिबद्ध , मैं उस अद्वितीय "देव" [परमात्मा] का एक विशेषण बनकर आया है जो सभी सत्त्वभूतों से है , सर्वव्यापी है , सभी कर्मों का अधिष्ठाता है , सबका साथी है , सबको चेतन प्रदान करने वाला है तथा निष्पापि भी है ।

नाथ संप्रदाय में "निर्गुण" शब्द का प्रयोग काफी हुआ है । वे अपने हृदयस्थ ब्रह्म को निर्गुण ही मानते थे । सिद्ध सिद्धांत पद्धति में कहा गया है :

" निर्गुणस्य शिवं शान्तं , गगने विश्वतोमुखम् ।

भू मध्ये दृष्टिमादाय ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥"¹

हमारे संत कवियों पर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि वे अपने इष्टदेव ही नहीं , साधना और मत को भी "निर्गुण" कहने लगे ।

कबीर ने कहा है-"निर्गुणो राम कबहु मेरे भाई"² और "निर्गुण ब्रह्म कहो रे भाई ।"³ वे अपने ब्रह्म को निर्गुण कहते हैं । इसी प्रकार संत बुल्सा साहब के "इष्टदेव निर्गुण दयालदानी हैं ।"⁴ इनके अनुसार-"राम निर्गुण शब्द का सार ही है।"⁵ इसी प्रकार संतों ने भी अपनी साधना को निर्गुण कहा है । उनकी साधना का प्रमुख अंग है "ध्यान" । "ध्यान" से पहले निर्गुण शब्द का प्रयोग करते हुए जगजीवन साहब कहते हैं : "जगजीवन गुं घरन पीर के निरगुन धरि ध्याने ।"⁶

[1] सम्यादिका कल्याणी बोध : सिद्ध सिद्धांत पद्धति ।

[2] कबीर ग्रंथावली पद 49 पृ० 104

[3] - वही - पद 345 पृ० 213

[4] बुल्सा साहब की बानी पृ० 26

[5] - वही - पृ० 19

[6] संत बानी संग्रह भाग-2 पृ० 131

इसी प्रकार गुलाब साहब ने कहा है - " निर्गुण मत सौर्ध वेद को
ग्रंथ" ¹ और कबीर ने कहा है : "सन्तन जात न पुंछो निर्गुनिया" ²

निर्गुण शब्द को सभी संतों ने अपने - अपने ढंग से आत्मसात् किया है । किन्तु भाव की दृष्टि से सभी में समानता अथवा एक्यता के दर्शन होते हैं । इसी परिप्रेक्ष्य में "सगुण" शब्द पर विचार कर लेना उपयुक्त ही जान पड़ता है ।

12] सगुण शब्द

"सगुण" शब्द साकार ब्रह्म के लक्षणयुक्त है । सगुण परम्परा के कवियों ने इस प्रकार के मनुष्यों को अपना आराध्य माना है । जिसमें सभी प्रकार की अच्छाइयाँ ही अच्छाइयाँ ही हों, अर्थात् जो देवता की कोटि में पहुँच जाता है । गुणों के कोटिक्रम के अनुसार मानव तीन प्रकार के होते हैं :

अ. राक्षस

आ. मानव

इ. देवता

अ. राक्षस वह होते हैं जिनमें बुराइयाँ ही बुराइयाँ होती हैं ।

आ, मानव में अच्छाइयाँ , बुराइयाँ दोनों होती हैं ।

इ. देवता वह होता है जिसमें अच्छाइयाँ ही अच्छाइयाँ होती हैं ।

"सगुण" शब्द के बारे में विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए

हैं । यहाँ एक मत उद्धृत किया गया है :

" जिस प्रकार संसार के पदार्थ असत् और काल्पनिक हैं, उसी प्रकार जीव भी अविद्या के ऊपर आश्रित रहता है । ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है , ईश्वर जगत् का स्वामी तथा निरंता है । इसलिए जीव उसकी कल्पना करता है और उसे दया, दाक्षिण्य , अगाध , कृपा आदि गुणों से मंडित मानता है , यही है सगुण ब्रह्म या ईश्वर ।"

सगुण धारा के कुछ प्रमुख तत्त्व इस प्रकार हैं : सगुण विचारधारा वाले , भगवान के अलंकार गुण मानते हैं । जोकि वाणी में उसके गुणों का बखान असंभव है ।

दूसरा महत्वपूर्ण गुण है भगवान की लीला । भगवान की लीला में भी वह इतना मदमस्त हो जाता है कि अपने को भी भूल जाता है किन्तु फिर भी अंत प्राप्त नहीं कर पाता और अंत में भगवान के समक्ष नतमस्तक हो जाता है ।

सगुण विचारधारा के अंतर्गत मूर्तिपूजा , लीलागान का अधिक महत्व है । सगुणधारा के मानने वाले भी ही मूर्ति पूजा पर विश्वास न करें परंतु अवतार भावना पर विश्वास रखते हैं ।

भगवान की लीला का गायन करना अपना परमधर्म समझते हैं । मूर्ति पूजा अपनी समस्त श्रद्धा के साथ करते हैं ।

मूर्ति पूजा , लीला गायन , अवतार आदि की अवहेलना को दृष्टि से नहीं देखता । भले ही वह इन कामों को स्वयं न करता हो । फिर भी वह अपने इष्टदेव को अपने हृदय के भीतर प्रभुत्व करता है । मूर्तिपूजा , लीला - गायन , अवतार आदि ईश्वर के अज्ञात गुणों के प्रतीक के स्वरूप हैं । वह इन प्रतीकों के माध्यम से ईश्वर के सच्चे स्वरूप को ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है ।

" सगुण विचारधारा में आत्मसमर्पण एवं दैन्य भाव पर बल दिया गया है ।"¹

जो भक्त अपने आप को तथा अपने लौकिक तथा भौतिक वैदिक सब प्रकार के कर्मों को भगवान के सम्मुख अर्पण कर देता है , उसी में वास्तविक समर्पण का भाव है ।

"लोहानो धिन्ता न कार्या निवेदितात्ममलोक वेदत्वात् ॥"²

सगुण धारा के अंतर्गत ईश्वर की उपासना के अनेक मार्ग हैं , अर्घन , आरती , पूजा , लेकिन सबसे प्रमुख है , नाम - जप । नाम - जपने से क्लृप्त कर्मों के कारण फलदूषित अंशकार विलीन हो जाता है :

" अथतिमर दुरत हरि नाम ते ।

ज्यो रजनी वसिषे को वंक्ष धिर न रहित रवि धामते ।

× × × × ×

तन मन सुद करन कानामय , बर निर्मल निहकाम ते ॥"³

॥१॥ नारदस्तु तदर्पिताग्निं चारितातद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति ॥ १९ ॥

॥२॥

॥नारद भक्ति सूत्र, पृ० २५॥

॥३॥ श्री निम्बार्क माधुरी, श्री परशुराम देव जी. पृ० ८४ पद १०

सगुण धारा के कवियों का मत है कि भगवान का नाम जपने से ही तन - मन जुद्ध हो सकता है । इसी कारण नाम - जप प्रमुख तत्त्व माना जाता है :

" अब तुम नाम गहो मन नागर

पार्ति कास अग्नि हैं वाँधी , सदा रहो सुखवागर ॥"¹

नाम जपने के कारण मनुष्य कास की अग्नि से बच जाता है , और सदा सुखी रहता है । उदाहरणार्थ :

" बड़ी है राम नाम की ओट ।

सरन गर प्रभु कादि देत नाहिं , करत कृपा के कोट ॥"²

सगुण विचारधारा वालों की धारणा है कि भगवान का नाम जपने से मनुष्य इतना सक्रियकारी हो जाता है कि वह समस्त दोषों से मुक्त हो जाता है :

" ईश्वर निर्घन के धन राम ,

घोर न लेत , पटत नहिं कबहुँ , आवै गाढ़े काम ॥"³

ईश्वर का नाम समस्त सुखों का प्रतीक है । निर्घनों का धन राम है । इसे न घोर पुरा सकता है । न यह पटता है । यह प्रत्येक आवश्यक एवं

कठिन समय में उपयोगी सिद्ध होता है ।

[1] सूर सागर , पहला खंड , प्रथम स्कंध , विनय , पृ० 29 , पद 9।

[2] — यही —

[3] — यही —

वस्तुतः नाम - रूप समस्याओं का समाधान और सगुण - साधना का सार है ।

इस प्रकार सगुण भक्तिधारा के अंतर्गत जो तत्त्व गहन अध्ययन के पर्याप्त परिलक्षित होते हैं , उनमें सगुण के असंख्य गुण , लीला , गायन , भगवान में मानवीय गुणों का विद्यमान होना , अर्पण अर्थात् आत्मसमर्पण , अर्चन , आरती , पूजा एवं अवतारवाद आदि गुणों की प्रमुखता है ।

13] निर्गुण और सगुण [साम्य एवं वैषम्य]

समस्त भक्तिकालीन साहित्यिक निधि दो प्रकार के दर्शनों पर आधारित है । ये दोनों दर्शन निर्गुण निराकार एवं सगुण साकार है । भारतीय साहित्यिक जगत के जिन कवियों ने "ब्रह्म"के निर्गुण रूप का अनुसरण कर ब्रह्म में निराकार एवं अमानवीय गुणों का रहस्योद्घाटन किया , वे निर्गुण कवि कहलाए और उनका दर्शन भक्ति का निर्गुण दर्शन कहलाया । जिन भक्तिकालीन कवियों ने ब्रह्म के सगुण साकार रूप को आत्मसात् किया तथा भगवान में आकार , गुण , मूर्ति , लीला एवं मानवीय गुणों को स्वीकार किया , वे सगुण भक्तिधारा के कवि कहलाए । इस प्रकार समस्त भक्तिकालीन निर्गुण एवं सगुण दो दर्शनों में विभाजित हो गया । आंशिक रूप में निर्गुण कवियों के प्रयोग इस बात के साक्षी हैं कि उन्होंने कहीं - कहीं अपने निर्गुण ब्रह्म का ऐसा प्रयोग किया है कि उनका निर्गुण सगुण साकार प्रतीत होने लगता है । यही कुछ सगुण धारा के कवियों की कृतियों में भी

लक्षित होता है क्योंकि कहीं - कहीं सगुण ब्रह्म एकदम निर्गुण का रूप धारण कर जाता है । निर्गुण एवं सगुण पर विस्तृत वर्ण करना अनिवार्य है ।

निर्गुणमार्गीय कवियों का ब्रह्म रूप , रंग , रेखा , गुण , जाति नेत्र सबसे रहित है जो न पुरुष है जिसके न स्त्री है न पिता है न माता है । जिसके न स्वास है - जिसको प्यास है । उदाहरणार्थ :

" नैन न , बैन न , सैन न , आस न , वास न , स्वास न , प्यास न याते ।

सीत न , धाम न , टोरे न ठाम , न पुंस , न वाम , न वाम , न माते ।"¹

" निर्गुण शब्द से तात्पर्य "गुणरहित" से है और इसका प्रयोग परमात्मतत्त्व के सगुण रूप से भिन्नता प्रकट करने के लिए किया गया था ।"²

इसी प्रकार सगुणवादी कवियों का ब्रह्म , रूप , रंग , वाणी , स्वास , जाति , नेत्र सब प्रकार से सुषण्णित है । वह गुणातीत है । परंतु कहीं - कहीं सगुण की उपासना करने वाले भक्तों ने भी अपने ईश्वर का अन्ततः निर्गुण ब्रह्म के रूप में अनेक स्थानों पर बखान किया है :

"अगुन अरूप असरु अण सोई ।"³

"निषानंद निष्पापि अगुना ।"⁴

"उपापक अकल अतीत अण ।"⁵

[1] सुंदर गंगावली , द्वितीय छंद , पृ० 660

[2] हिन्दी विश्वकोष , छंद 6 , नागरी प्रचारिणी सभा , वाराणसी

[3] डॉ० माता प्रसाद गुप्त , रामचरित मानस

[4] बाल काण्ड , पृ० 65 , पद 3

~~*****~~

[5] बाल काण्ड , पृ० 62 , पद 11

जो ब्रह्म गुण रहित है , व्य रहित है , असत् है , अपन्मा है , निर्वानन्द है , निर्यापि है , अनुपम है , व्यापक है , अकाश है , इच्छा रहित है , अकल्प है , अनामय है , जिसके न नाम हैं न रूप है , जो अविगत है और आदर रहित है ।

इसी प्रकार सूरदास कहते हैं कि वह पूर्ण ब्रह्म अकाश है , अविनाशी है :

" पुरन ब्रह्म अकाश अविनाशी ,
सबनि संग सुख दीन्हों ।"¹

निर्गुण और सगुण धाराओं के समस्त कवि इस एक तत्त्व पर सामूहिक रूप से सहमत हैं कि ब्रह्म प्रत्येक स्थान पर है , लेकिन उसका वर्णन करना असम्भव है । इस संबंध में कबीरदास का कथन है :

" अविगत अकल अनुपम देखया ।
कहता कहा - जाई । "²

जिसने उस अविगत , अविकल , अकाश , अनुपम ब्रह्म को देखा है उससे उसका वर्णन नहीं हो सकता , वह केवल संकेत कर सकता है ।

इसी प्रकार रामभक्ति - शास्त्र के कवि भी ब्रह्म का वर्णन करने में अपने को विवश पाते हैं :

" तेहि कर दहुँकर बडाना ,
जिहि कर मर्म भेद नहिं जाना । "³

11 सूर सागर पहला छंद दशम स्कंध पृ० 661 पद 1171

12 कबीर गोपीवली , पृ० 90

13 प० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास

इसी प्रकार गोपियों कहती हैं - हे। कृष्ण , तुम्हीं त्रिभुवन के स्वामी हो , तुम्हारी जो इच्छा है , वहीं करो ।

" तुम त्रिभुवन पतिनाथ, करो सोई जिय भावै ।"¹

वहाँ एक ओर इन दोनों धाराओं में समानता है वहीं ये एक - दूसरे से भिन्न भी हैं । जहाँ निर्गुणवादी कवियों ने मूर्तिपूजा , अवतार का विरोध किया है , वहीं सगुणवादी मूर्तिपूजा एवं अवतार के समर्थक हैं । निर्गुण सम्प्रदाय के पांडेयों , पुजारियों का विरोध करते हुए संत मनुकदास जी कहते हैं :

" अस्तु अस्ताह ब्रह्म शक्तिक बुदा है एक ।

मेरे तो अमेद भाव माया पति छोई है ।।

x x x

कहत मनुक मैं तो विषा न जानो दूजा ।

जोई मन मेरे में है नैनन में सोई है ।।"²

एक लम्बे समय तक मनुक्य को पंडों , पुजारियों , साधुओं ने भिन्न - भिन्न प्रकार की दुविधाओं में घेरे रखा । जनता उचित मार्ग पर चलने के विपरीत मायाबाल में पंखती रही और साधु अपना काम करते रहे और सगुणवादी साधु , पंडित आदि का विरोध करने के स्थान पर उनका आदर , सत्कार करते रहे । उन्हें पूज्य समझा जाता रहा और मूर्तिपूजा, लीला का गायन , अवतार

11] ब्रजभूषण शर्मा : कविति ब्रज नागरी , कंमनदास , पृ0 17

12] मनुकदास जी की बानी , पृ0 27

सगुणधारा के प्रमुख तत्त्व बन गए :

निर्गुणवादी कवियों ने जाति-पाँति का बड़ा विरोध किया है।

पलटू साहब कहते हैं :

“ ब्रह्मक्षेत्र हतमति हस्त तुम्हार पाँडे बहाना ,

सब जाति में उत्तम तुम्हीं करतब करों कसाई ।”¹

संत पलटू साहब ब्राह्मणों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों मार्ग से भटके हुए हैं ।

इस प्रकार दादू दयाल साहब कहते हैं कि :

“ ये पहुँचे ते कह गए तिनकी एक बात ।

सबै सयाने एक मति तिनकी एक जाति ।।”²

संत दादू दयाल ने जाति-पाँति के भेदभाव को निस्सार बताया है ।

उपर्युक्त तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक , विस्तृत व्याख्या इस बात की साक्षी है कि जहाँ भक्तिकालीन निर्गुण एवं सगुण धाराओं में स्पष्ट रूप में अभिन्नता पाई जाती है , वहीं सूक्ष्म रूप में दोनों में समानता के भी दर्शन होते हैं । अतः स्पष्ट है कि दोनों में असमानताओं के होते हुए भी कुछ समानताएँ सूक्ष्म रूप में अवश्य हैं ।

॥१॥ पलटू साहब की बानी , भा0 2 , पृ0 81-82

॥२॥ दादू दयाल की बानी , पृ0 139

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय जीवन का इतिहास भक्ति और आध्यात्म का इतिहास है। भक्तिकाल में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की भक्तियों का चरमोत्कर्ष दिखाई पड़ता है। इस काल के कवियों में पर्याप्त वैराग्य है, फिर भी बहुत सी सामान्य भावनारें इनके काव्य में उपलब्ध होती हैं। संतों के स्वतंत्र चिंतन, सरल स्वभाव तथा आध्यात्मवादी अटपटी वाणी को संत काव्य या संत साहित्य के नाम से स्वीकार किया गया है। संत साहित्य का परिचय प्राप्त करने से पूर्व यह आवश्यक ज्ञान पड़ता है कि "संत" शब्द पर विचार कर लिया जाए। नीचे हम "संत" शब्द पर विचार करेंगे :

14] "संत" शब्द

"संत" किसे कहते हैं, संतों का वास्तविक जीवन क्या है और बाह्य तथा आध्यात्मिक किन-किन उक्तियों द्वारा संत भाव का यथार्थ परिचय प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार के विभिन्न प्रश्न विद्वानों के मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ करते हैं। संसार के प्रकोप से हताश मानव आदि काज से ही परमभक्ति की छत्रछाया में विश्राम करने को लातापित रहता है।

"संत" शब्द का संक्षिप्त परिचय और विस्तृत व्याख्या असंभव है। प्राचीन काल से ही समस्त संसार के मनीषी अनित्य का परिचय प्राप्त करने हेतु प्रयत्न-शील रहे हैं। कुछ ने इसे देखा और कुछ ने इसे पाया। कुछ ने सोचा, कुछ ने अंतर में उद्भासित कर अनुभव भी किया परंतु अनुभूत की सत्यता में कोई भी अभिव्यक्ति न कर सका। "संत" शब्द विद्वानों में अनेक प्रकार से प्रयुक्त हुआ है। यह विद्वान

अन्य कोई नहीं, सत् के मर्म संत ही हैं। जब सांसारिक भोगों में वैराग्य होता है और चित्त निवृत्तिपुत्री होकर अंतर्गत - सत्त्व को खोज में व्यग्रा हो उठता है तब इस जगत् के रहस्योद्घाटन हेतु पथ - प्रदर्शक संत अथवा साधु की खोज व्याकुलता पूर्वक होती है। इसी अवस्था में संत का परिचय और संत के लक्षणों को जानने के लिए हृदय में स्वभाविक ही तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। यह किसी देश विशेष अथवा काल - विशेष की बात नहीं है। प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक व्य से होता है। हम बाहरी बातों अथवा बाहरी व्यवहारों पर विचार कर एक सामान्य शक्ति को भी पूर्ण व्य से नहीं समझ सकते क्योंकि जिन जटिल शक्तियों की प्रेरण से मनुष्य किसी कार्य विशेष को करता है अथवा करने के लिए बाध्य होता है, उसका स्वयं और प्रभाव समझे बिना कार्य अथवा आचरण के नैतिक दायित्व के विषय में निर्णय करना असम्भव होता है।

"साधारण मनुष्य स्कूल अभिनिवेश में बंधा होने के कारण उसके कार्य का विस्तार-क्षेत्र बहुत ही संकीर्ण होता है। किन्तु जो महापुरुष हैं उन पर अतृप्त शक्ति पूषन का प्रभाव और भी अधिक व्यापक व्य से पड़ा करता है। अतएव उनका ठीक-ठीक समझना और भी अधिक दुःसाध्य है।"

"संत" शब्द का अर्थ खोजने के क्रम में विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत इस प्रकार हैं :

गीता के सत्रहवें अध्याय में भगवान ने "संत" शब्द का प्रयोग पाँच प्रकार से किया है :

" सत नाम ब्रह्मात्माका है ।"¹

" तदर्थं कर्म अर्थात् अपने योग्येय के लिए कोई भी कर्म न करके ,
वासुदेव के हेतु कर्म करना "संत" है ।"²

" यज्ज्ञान , तपः सात्त्विक कर्म में स्थित को सत कहते हैं ।"³

" सद्भाव और साधुभाव रखकर प्राणीमात्र से सद्भाव रखना,
सर्वभूतहित रहना और रागद्वेष आदि धन्यों में न पड़ना भी सत् है ।"⁴

" प्रसक्त कर्म अर्थात् अच्छा सांसारिक या आत्मा द्वारक मांगसिक
कर्म करना भी सत् कहा जाता है ।"⁵

इन पाँच विषयों में श्रद्धा एवं प्रेम सहित जिनका मन लगा हुआ है ,
उन्हीं को संत कहते हैं ।

"संत" उसे कहते हैं जो "सत्स्वयं, नित्यसिद्धि, वस्तु का साक्षात्कार
कर चुके हैं अथवा अपरोक्ष रूप से उपलब्ध कर चुके हैं । और इस उपलब्धि के फलस्वरूप
अच्छ सत्य में प्रतिष्ठित हो गए हैं , वे ही संत हैं ।"⁶

[1] सत्सदिति निर्देशो ब्रह्मण्यप्रविधः स्मृतः ।। [गीता 17-23]

[2] कर्मैव तदर्थं सद्यस्याभिधीयते ।। [गीता 17-27]

[3] यो तपसि दाने चः स्थितिः सदिति योग्यो ।। [गीता 17-26]

[4] सद्भावे साधु भावे चः सद्यस्याभिधीयते ।। [गीता 17-26]

[5] प्रसक्ते कर्मणि तथा सच्छन्दः पार्थ पुण्यते ।। [गीता 17-26]

[6] कल्याण, संत अंक, प्रथम खंड , पृष्ठ 13

श्री गोरखर नन्द जी का मत है , "संत शब्द की व्युत्पत्ति "जम्" [सम्भवतो] से करते हुए उसे लोकानुगृही बताया है तथा तम् [संतो] से उसे ब्रह्मानन्द सम्पन्न व्यक्तित्व कहा है , क्योंकि इस "जात"का ही अपभ्रंश रूप है "संत" । इसी ही नहीं "जु" [दाने] से सन्ति और उसी से इच्छानुकूल फल देने वाले के अर्थ में "संत" की व्युत्पत्ति स्वीकार की है ।"¹

भूतहरि ने "संत" शब्द का प्रयोग "परोपकारी" के अर्थ में किया है।"²

कातिदास ने "संत" शब्द का प्रयोग "बुद्धिमान" के अर्थ में किया है।"³

धम्मपद में "संत" शब्द "ज्ञान्त" के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।"⁴

प्रो० रामछितावन राय के मतानुसार "संत" शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ है "नित्य सन्तान" जिसका कभी विनाश नहीं होता । इस दृष्टि से यह "सत" शब्द का पर्यायवाची माना जा सकता है ।"⁵

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार - व्यवहार में भी "संत" शब्द के दो अर्थ लिए जाते हैं - जो वास्तव में हो तथा इच्छा या जुम हो ।"⁶

इन विद्वानों की परिभाषाओं को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रत्येक परिभाषा का अर्थ एक समान ही निश्चितता है । किसी भी शब्द

॥ कल्याण, संत अंक, विशेषांक ॥ वेद में संत पृ० 49

॥2॥ सन्तः स्वयं परितो विहिताभियोगाः ॥

॥3॥ सन्तः परीक्षान्तरद् भवन्ति मुद् पर प्रत्ययनेन बुद्धिः ॥

॥4॥ सन्तः अस्स मनं होति । अहन्तः वग्ग गाथा ॥

अधिगच्छे वदे सन्तं संशयसर्गं सुखं भिक्षुवग , गाथा ॥9॥

॥5॥ प्रो० रामछितावन पण्डित, धर्मचक्र अभिनन्दन ग्रंथ , पृ० 234

॥6॥ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था ॥ भाग-1

का सही अर्थ जानने के लिए शब्द विशेष की व्युत्पत्ति ली जाती है । इस स्थिति में एक शब्द के अनेक अर्थ सामने आते हैं । ठीक यही स्थिति "संत" शब्द के सामने है ।

समस्त विद्वानों के मतों पर समीक्षात्मक दृष्टिपात के परचात यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि "संत" शब्द का अर्थ सज्जन पुरुष , परोपकारी , बुद्धिमान अच्छा या शुभ हो अथवा नित्य सनातन के रूप में स्वीकार करना युक्तिसंगत है ।

15] संतों द्वारा प्रयुक्त "संत" शब्द

हमारे देश के निर्गुण साम्प्रदायिक संतों ने संत का स्थान बहुत ऊँचा माना है । कुछ विद्वान तो केवल ऐसा मानते हैं कि केवल सत्य, ज्ञान, आनन्द में स्वयं प्रतिष्ठित होना ही संत भाव का पूर्ण आदर्श नहीं है क्योंकि जो स्वयं सत्यमें प्रतिष्ठित होकर भी दूसरों को सत्य में प्रतिष्ठित करना नहीं चाहता, नहीं करता अथवा नहीं कर सकता, वह संत का पूर्ण आदर्श नहीं है । सत्य, ज्ञान और आनन्द को प्राप्त करना ही मनुष्य का धर्म उद्देश्य नहीं है किन्तु उसे प्राप्त करके समस्त जगत् तक पहुँचाना ही मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य है ।

संतों की वाणियों में "संत" शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है ।

महात्मा कबीर का संतों के विषय में मत है :

" निरवैरी नि कामता साईं सेती नेह ।

विषिया सँ न्यारा रहे साधन का मत रह ॥"।

संत को निरवैरी, निष्काम, हरिभक्ति तत्पर और विषय-विरक्त

होना चाहिए । इस संबंध में संत कबीर की कुछ पंक्तियां उदाहरणार्थ द्रष्टव्य हैं :

" साधु बड़े परमार्थी धन उ रैं बरसै आय ।

तपन बुझावै और की अपनी पारस लाय ॥

सुख-दुख एक समान हैं हरिभ सोक नहिं व्याप ।

उपकारी निष्कामता उपजै होइ न ताप ॥४१

संत कबीर का मत है कि संत धन के समान परमार्थी हैं, जो स्थिति विनष्ट करके दूसरों को शीतलता प्रदान करते हैं तथा दुःखों में एक समान धैर्यवान और निष्काम रहते हैं । वही संत कहलाने योग्य हैं ।

संत दरिया साहब [मारवाड़ वाले] की धारणानुसार संतों से तात्पर्य है :

" दरिया लच्छन साध का क्या गिरही क्या मैत्र ।

निहक्यटी निरसंक रहि , बाहर भीतर एक ॥४२

इस प्रकार दयाबाई का मत है कि संत वही है जो अठ विकारों से रहित है और काम, क्रोध, लोभ, जिसका स्पर्श नहीं कर पाते । ऐसा व्यक्ति ब्रह्म भाव रस में सर्वदा लीन रहता है । ध और दीनता से सम्पन्न रहता है तथा दूसरों के दुःख को शीतलता प्रदान करता है :

" काम क्रोध मद लोभ नाहिं न विकार करि हीन ।

पंथ कुंथ न जानहीं , ब्रह्म भाव रसलीन ॥

दया , दान अ दीनता , दीनानाथ दयाल ।

हिरदै सीतल दुःख सम , निरस्त करै निहाल ॥४३

संत तुलसीदास ने परमात्मा के दो रूप देहे हैं - निर्गुण और सगुण । उनके विचार से निर्गुण परमात्मा "स्व" स्वयं हैं और सगुण का अर्थ है , परमात्मा का संत स्वयं में अवतार लेना । इसी का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि , जो व्यक्ति इस रहस्य से परिचित है , वह व्यर्थ में ही विचार-मग्न नहीं रहते :

" संतन से मगि नहिं छट-छट जानन हार ।

जीव दया हिरद बसै , नाहक करत विचार ॥"¹

संत मल्लूक दास का विचार है - दास्य भावना हैं संतों की भक्ति करने में ही सब कुछ है । वे भगवान और संत में कोई अंतर नहीं समझते :

" राम राम असरन सरन , मोहिं आपन कर लेहु ।

संतन संग सेवा करै , भक्ति मधुरी देहु ॥"²

इसी प्रकार संत कबीर, संत तुलसी साहब, पलटू साहब, गरीबदास, सहजु बाई, दरिया साहब [मारवाड़ वाले] तथा दादू आदि ने "संत" शब्द का उत्प्रेषण सन्नित्तार किया है तथा सभी संतों का एकनिष्ठ विचार यह है कि संत विवेकी, दया, क्षमा, त्याग, शीत, विश्वबंधुत्व में विश्वास रखने वाला समस्त विकारों से परे है । उस का व्यक्तित्व समाज के लिए एक वरदान है । कहने का तात्पर्य यह है कि संत बिरले हैं । बड़े सौभाग्य से ही उनके दर्शन होते हैं ।

[1] संत बानी संग्रह, पृ० 129

[2] -- वही -- पृ० 102

16] संत - साहित्य का समय - निर्धारण

संत-साहित्य का समय निर्धारण ऐसा विषय है जिसके संबंध में विद्वान संकोच में अवश्य पड़ जाते हैं क्योंकि संतों के भाव हमें आदिकाल से ही अवगत होने लगते हैं । किसी समय के निर्धारण के लिए पुर्गीन साहित्य का आश्रय लेकर उसका समय निर्धारित किया जाता है । आदिकालीन सिद्धों, नाट्यों में वह भावना अंकुरित होती दिखाई पड़ती है जो आगे चलकर संतों में स्फुटित हुई । संत साहित्य के समय-निर्धारण में विद्वानों ने अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं किन्तु इस संबंध में डॉ० मुहम्मद अहसन और परशुराम चतुर्वेदी का संतसाहित्य का समय-निर्धारण उल्लेखनीय है । इन दोनों महानुभावों ने संत साहित्य का समय-निर्धारण निम्न प्रकार से किया है :

1. प्रारम्भिक युग [सं० 1200 से सं० 1550 तक]
2. मध्ययुग पूर्वार्ध [सं० 1550 से सं० 1700 तक]
3. मध्ययुग उत्तरार्ध [सं० 1700 से सं० 1850 तक]
4. आधुनिक युग [सं० 1850 से आज तक]

1. प्रारम्भिक युग

[सं० 1200 से सं० 1550 तक] । संतसाहित्य के विद्वानों ने निर्विवाद संत जयदेव को पहला संत मानकर उनसे प्रारंभिक काल का आरम्भ किया है । जयदेव में संतों के मूल तत्व परिलक्षित होते हैं । जयदेव के परचास लगभग दो सता-विंशति तक अधिकतर संतों का विवेचन पद्य-प्रदर्शकों के रूप में किया जाता है । कबीर के जन्म के परचास संतों के कुछ सिद्धांत दृष्टिगोचर हुए । कबीर ने सर्वप्रथम

संतमत के कुछ सिद्धांतों एवं नियमों का सूत्रपात किया । कबीरपुगीन अन्य संतों ने भी कबीर के नियमों अथवा सिद्धांतों को जनप्रचलन में लाने का सफल प्रयास किया । इतना कुछ होने पर भी संतमत का कोई संगठित रूप सामने नहीं आया । संतमत का संगठित रूप गुरु नानक के समय से सामने आया क्योंकि उन्होंने एक विशेष वर्ग बनाकर संतमत के सिद्धांतों को इस वर्ग में लागू किया । संतों के इस दो सौ वर्ष के अंतर्गत बहुत कम संतों के नाम आते हैं । जयदेव से आरम्भ मानकर इस काल का सूत्रपात किया गया, जयदेव के समय तक बौद्धधर्म के वज्रयान और सङ्खयान सम्प्रदाय आरम्भ हो चुके थे । इन सम्प्रदायों का प्रभाव वैष्णवों पर था । जयदेव वैष्णव धर्म के अनुयायी थे । अतः उन पर बौद्ध धर्म का प्रभाव अवश्य रहा होगा । जयदेव में निम्बकाचार्य, गोरखनाथ आदि का भी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । कबीर और उनके समसामयिक संतों पर भी यह प्रभाव स्पष्ट है । इसी कारण प्रारंभिक काल के लगभग दो सौ वर्ष तक के संतों की रचनाओं में बौद्ध, शिख, नाथों आदि का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य दिखाई देता है । इस काल के संतों में संत जयदेव, संत प्रितोचन, संत नामदेव, स्वामी रामानन्द, संत सैन नाई, संत कबीर साहब, संत पीपा, संत रैदास, संत कमास, संत धन्ना भक्त के नाम उल्लेखनीय हैं ।

2. मध्ययुग पूर्वार्द्ध [सं० 1550 से सं० 1700 तक]

संत मत के प्रारंभ में कबीर और उनके समसामयिक संतों के समय तक कोई संगठित रूप से कार्यवाही नहीं चल सका क्योंकि यह संत अपने भ्रमण के समय अथवा किसी स्थान विशेष पर जाकर ही अपने मत का प्रचार व्यक्तिगत रूप में करते रहे । दूसरी बात यह कि कबीर और उनके समसामयिक संतों का क्षेत्र विशेष रूप से उत्तरी

भारत की काशी नगरी रही । इसमें संदेह नहीं कि इन संतों से जनसाधारण का एक वर्ग अवश्य रूप से प्रभावित हुआ । इसी प्रभावित वर्ग ने श्रद्धा के कारण इन संतों की मुखरित वाणी को लिखित रूप देना भी आरंभ कर दिया । कहने का तात्पर्य यह है कि संतों के श्रद्धालु संतों की वाणी को श्रद्धावश लिखने लगे क्योंकि इस संत वर्ग का मूल उद्देश्य उपदेश देना था । इसलिए भी श्रद्धालु गुर्मुख मानकर इनके उपदेशों को लिखने के साथ-साथ कंठस्थ भी कर लिया करते थे । १५५

गुरु नानक के समय में संतमत में दो बातें विशेष रूप से आ गई । प्र पहली तो यह कि संतों ने वर्ग बनाकर रहना एवं सुसंगठित रूप से संतमत का प्रचार करना आरंभ कर दिया । दूसरी यह कि संतमत का प्रचार क्षेत्र उत्तरी भारत तक सीमित न रह गया अपितु पंजाब में भी इसका सुसंगठित प्रचार होने लगा । गुरु नानक के पंथ को देखकर ही राजस्थान में दादू पंथ, निरंजनी पंथ सम्प्रदाय मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में कबीर पंथ, मनुक पंथ आदि का सुसंगठन हुआ ।

इस युग के संतों की रचनाओं को श्रद्धालुओं द्वारा लिखने से एक लाभ यह हुआ कि इनकी रचनाएँ लिखित रूप में आ गईं । और सुरक्षित हो गयीं । नानक एवं दादू की शिष्य-परम्परा में इस ओर विशेष ध्यान रखा गया । इस प्रकार संतों की रचनाएँ सुरक्षित होने से यह लाभ हुआ कि कालान्तर में उनकी वाणी एवं कुलित्व शोधार्थियों तक पहुँच गया । इस काज की विशेषता यह है कि इसमें संतमत के प्रचार का क्षेत्र बढ़ गया तथा प्रचार के क्षेत्र में बृद्धि हुई और सुसंगठित वर्गीय रूप में

संतमत का प्रचार हुआ । रचनाएँ लिखित रूप में प्राप्त होने से संतों की मूलभाषा एवं शैली का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ । इस युग के संतों में विशेष रूप से जमनाथ, गुणानक देव, श्रेष्ठ फरीद, गुणानंद, गुणानंद, संत सिंगा जी, संत भीमन जी, गुणानंद रामदास, संत धर्मदास, संत दादू दयाल, गुणानंद अर्जुन, संत बाबना जी, संत बाबरी साहिब, संत बीर साहब, गरीब दास, [दादू पंथ] संत हरिदास [चिरंजन पंथी] , संत आनन्द धन, संत भीमन जी, [दादूपंथी], संत बाण्डा जी [दादूपंथी] गुणानंद बहादुर तथा मल्लूकदास आदि उल्लेखनीय हैं ।

3. मध्ययुग उत्तरार्द्ध [सं० 1700 से सं० 1850 तक]

इस युग में संतों ने अपने मत का कुलकर प्रचार किया। विभिन्न रचनाओं की दृष्टि इस युग में हुई । अनेक सम्प्रदाय संतों ने स्थापित कर लिए । इस अलग संत सम्प्रदाय की भावना के फलस्वरूप प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने-अपने सिद्धांतों तथा विचारों का निर्माण कर लागू करना शुरुआत कर दिया । प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने धर्मग्रंथ निर्धारित कर अपनी पृथक् एवं पूर्ण पद्धति बना ली । इस युग में संतों ने अपने पूर्व अवस्था प्राचीन संतों को अपना गुरु कहा तथा कुछ ने स्वयं को उन प्राचीन संतों का अवतार माना । गरीबदास ने स्वयं को कबीर का तथा दरणदास ने स्वयं को तुलसीदास का शिष्य घोषित कर दिया । दरिया साहब [मारवाड़ी] दादू के तथा दरिया साहब [बिहारवासी] कबीर के अवतार के रूप में परिचित होने लगे ।

परमुराम बलदेव के अनुसार "एकाध ने अपने दो भविष्य का उद्धारक अथवा मसीहा तक घोषित कर दिया । ... प्राणनाथ ने अपने को कल्कि अवतार अथवा

संसार को सुधारकर एक सूत्र में बांधनेवाला मसीहा बतलाया तथा इसके लिए पुराने धर्मांधों के प्रमाण उद्धृत किए ।¹

इस युग को एक विशेषता यह रही है कि संतों में समन्वयात्मक भावना जागृत होने लगी । प्रायः प्रायः ने हिन्दू मुस्लिम एवं ईसाई धर्मों को मूलतः एक ही धर्म घोषित किया । इस युग में संतों के सक्रिय रूप से कार्यरत होने के कारण इनकी रचनाओं में वृद्धि हुई । उन्होंने दोहा एवं चौपाई को न्यूनाधिक रूप में अपनाते हुए अन्य प्रवासियों का भी अनुसरण किया । विचारों एवं विषयों में भी परिवर्तन आ गया । जिसके फलस्वरूप दुसहरण एवं धरनीदास आदि ने प्रेम कहानियों की भी रचना की । इस प्रकार मध्ययुग का यह उत्तरार्ध काल साहित्य-निर्माण की दृष्टि से पूर्वार्ध से उच्च स्थान रखता है तथा इसे संतसाहित्य का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है । इस युग के संतों में बाबा ताज, तुरसीदास, [बिरंजनी] संत रणब जी, संत सुंदर दास [छोटे], संत थारी साहब, बाबा धरनीदास, संत कुता साहब, गु गोविंद सिंह, संत बुलेशाह, संत गुलाब साहब, संत जगजीवन दास, [सत्तनामी] संत दीन दरवेश, बाबा विनाराम, संत दूजनदास, संत दरिया साहब [मारवाड़ी], संत गरीबदास, संत दरिया साहब [बिहार वाले], संत चरणदास, संत शिवनरायण, संत भीखा साहब, संत सहजोबाई, संत दयाबाई, और रामचरन आदि उल्लेखनीय हैं ।

4. आधुनिक युग । सं० 1850 से आज तक ।

~~स्वर्णयुग~~ अंग्रेजों ने भारत में पदार्पण किया । तत्पश्चात् पाँच जमाएँ

[[परशुराम पुरुषोत्तम : संत काव्य : पृ० 324

जीजों के शासन भार संभालने के समय से ही यह आधुनिक युग का आरम्भ स्वीकार किया जाए तो अत्युक्ति न होगी । पारचात्य संस्कृति का भारतीय संस्कृति से टकराव हुआ और दोनों ने एक-दूसरे को न्यूनतम रूप में अवश्य प्रभावित किया । भारतीय जनसमूह पर पारचात्यसंस्कृति का प्रभाव अधिक पड़ा । विशेषकर निम्न वर्ग इससे अधिक प्रभावित हुआ और उसमें आत्मनिरीक्षण एवं आत्मसुधार की भावना जागृत हो उठी । भारतीय बुद्धिमान समाजसुधारकों ने अपनी धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक विचारधारा पर एक नवीन दृष्टि से विचार किया । इस युग के संत भी सिद्धित थे । उन्होंने भी आवश्यकतानुसार एवंसमत के अनुष्य अपनी विचारधारा एवं सिद्धांतों का निरीक्षण कर उसमें आवश्यक परिवर्तन किए । संतों की रचनाओं में गंभीरता आ गई जिसने इन रचनाओं को आकर्षक एवं प्रभावशाली बना दिया । इन रचनाओं में फारसी, उर्दू की प्रचलित शैलियों का प्रभाव बढ़ गया । जिससे रचनाओं में मौलिकता एवं प्रवाह अत्यधिक लक्षित होने लगा ।

विषय की गंभीरता के साथ-साथ रहस्यगोपन के भी दर्शन होने लगे ।

इस युग के कवियों में कवित्व गुणों के आधार पर के ल पल्लू साहब और स्वामी रामतीर्थ के नाम उल्लेखनीय हैं । किन्तु निरपलदास, संत शिवदयाल, संतसातिगराम आदि का नामोल्लेखन भी किया जा सकता है ।

१७। संतों की परम्परा

हिन्दीसाहित्य में विद्वानों ने संतमत का प्रवर्तक कबीर को माना है लेकिन कबीर को संतसम्प्रदाय का प्रवर्तक लिख करने वालों का यह कथना है कि

कबीर से पहले अनेक निर्गुण भाव के साधक हुए किन्तु संतमत की जो सहज धारा हिन्दी-साहित्य की कविता में प्रभावित हुई उसका आरंभ कबीर से हुआ । लेकिन कबीर से पूर्व महाराष्ट्र के कुछ निर्गुण भाव के साधकों की कविताएँ मिलती हैं । इनमें प्रमुख हैं महाराज सोमेश्वर [127६0], नामदेव [1267६0], ज्ञानेश्वर तथा मुक्ताबाई आदि ।

इस संबंध में निर्गुण साहित्य के आलोचकों का अपना अलग-अलग मत है : डॉ० राजदेव सिंह का कथन है " आचार्य परमुरम घुर्तुवदी ने कबीर के पूर्वकालीन संतों में जयदेव, नाम देव, साधाना, तातदेव, बेणी और त्रिलोचन का उल्लेख किया है । स्पष्ट है कि यह संत परम्परा का प्रारंभ भी इन्हीं से मानते हैं ।" इसी प्रकार कबीर आदि संतों ने अपनी बानियों में भक्त जयदेव का बड़ी श्रद्धा से नाम लिया है ।

गुं ग्रंथ साहब में इस बात का उल्लेख मिलता है । इनके अनुसार जयदेव की भाषा-शैली आदि मिली है । जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार मिल जाता है :

"वंद संत मेदिया, नाद सद पूरिजा, सूरसतखोड़ सादहुकीजा ।

अवस वल लोड़िया, अवस चल धापिया, जण्ड , पड़ियो ॥"²

इस प्रकार पूर्ण मराठी में संत परम्परा और हिन्दी संत परम्परा के परवर्ती पंजीबी संतों की परम्परा का उल्लेख आवश्यक है । "मराठी संत परम्परा

[1] डॉ० राजदेव सिंह: संत साहित्य का पुनर्मूल्यांकन, पृ० 22

[2] गुं ग्रंथ साहब , पृ० 1106 [1951, अमृतसर]

के प्रवर्तक चक्रधर थे । इनका समय सन् 1233 ई० के निकट समझा जाता है । इनकी रचनाओं में प्रस्तावित पद्य का स्वभाव कतिपय अंशों में हिन्दी संतों की रचनाओं के भाव पद्य के समान नहीं है । "1

महाराष्ट्री संत-परंपरा में "संत-साधना का नाम आदर के साथ लिया जाता है । नामदेव ने अपनी रचनाओं में इसका उल्लेख किया है । यह सिन्ध के निवासी थे तथा ये जयदेव के समकालीन थे ।"2

संत नामदेव बारकरी सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं । उत्तर भारत में जो स्थान कबीर का है वहीं स्वयं महाराष्ट्र में नामदेव का है । संत नामदेव का जन्म सन् 1260 में वर्षी कुत में हुआ था । 80 वर्ष की आयु में उन्होंने समाधि ली ।

हिन्दी-संत-परंपरा में कबीर का नाम आदर-सत्कार के साथ लिया जाता है । कबीर युग चिन्तक, युग उन्नायक और भक्त आदि इन भूमिकाओं में अपने व्यक्तित्व का प्रसार करते हैं । वे अपने एक दोहे में कहते हैं :

"तुम जिन जानों गीत हैं , यहु निज ब्रह्म विचार ।

केवल कहि समुझाइया आत्म साधन सार है ॥"3

"कबीर जीवन में आस्था रखने वाले साधक थे । उनमें भक्ति, ज्ञान, अनुराग, विराग, आकर्षण और विकर्षण इन समस्त तत्त्वों के समन्वय की महती धेखा

111 मूल स्थानी भिन्न-भिन्न हो जोई न काल क्साई ।

गुरु बचने उडियाना दृष्टि बन्धाई जेबीमा चंचल नाहीं ॥" हिन्दी को मराठी

12 परशुराम धौदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० 100 संतों की देन।

13 कबीर ग्रंथवाली पृ० 80 पद 9

विविधमान है । योग की साधनात्मक प्रक्रियाओं से प्राप्त प्रसाद जीवन की सापेक्षता में ही उपलब्ध हो सकता है ।”

कबीर की परम्परा में पढ़ने वाले संतों में रैदास, धन्ना, पीपा, सैन और कमात प्रमुख हैं । कमात इनके पुत्र तथा शिष्य भी थे और शेष चारों इनके गुलाम भाई समझे जाते हैं । इनमें सैन नाई थे और धन्ना जाट थे । पीपा गांगरौन गढ़ के राजा थे और रैदास चमार थे । इन संतों के पदों में कबीर के प्रति गहरी आस्था थी।

संत-परम्परा का आरंभ कबीर से माना जाता है । संत परस्पर एक मत हैं । यह ब्राह्मणों, वेद आदि को नहीं मानते थे । इन्होंने जातिगत भेदभाव को भी नहीं स्वीकारा है । इनकी दृष्टि में सब एक समान हैं । कोई छोटा-बड़ा नहीं है । इनकी निर्गुण राम के प्रति एकनिष्ठ आस्था है ।

इस प्रकार संत कवियों ने भारतीय समाज में उत्पन्न साम्प्रदायिक जाति-पांति के भेदभाव, रीजा, नमाज, तीर्थ, व्रत, प्रतिमापूजन, संकीर्णताओं आदि को मिटाकर प्रेम की ऐसी संजीवनी तैयार की जिसके पान से सभी धन्य हो गए ।

संतों का दृढ़ विश्वास समाजवादी, प्रगतिवादी, व्यापक व्यक्तित्व, असम्भावित सम्भावना, अस्तित्वता, सूप जैसे तत्त्व ग्राहक वृत्ति, विश्वव्यापी मानव धर्म की प्रतिष्ठा करने की अद्भुत क्षमता प्रभृति विशेषताओं से युक्त है ।

॥॥ संतों सहज-सहज समधि भली ।

साईं से मिलन भो जा दिन हैं , सुरत न रंत चली ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० 246

18] निर्गुण संत परम्परा और दरिया साहब - [बिहार वाले]

हिन्दी में निर्गुण संत परम्परा का प्रारंभ संत कबीर से माना जाता है । कहा जाता है कि संत कबीर ने रामानन्द से शिष्य के रूप में राम-नाम की दीक्षा ली और बाद में अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व के द्वारा गुप्त ज्ञान के प्रकाश में बहुत कुछ नई विचारधारा का प्रारंभ किया जिसे हम निर्गुण सम्प्रदाय कहते हैं ।

संत परंपरा के संतों के नाम इस प्रकार हैं - कमास, धर्मदास, सिंगाची, दादू, रणब, मलूकदास, सुंदरदास, प्राणनाथ, शक्तिधर धरनीदास, पारी साहब, केशवदास, बुल्ला साहब, दरिया साहब [बिहार वाले], दरिया साहब [मारवाड़ वाले], कगबीवन साहब, दूतनदास, धरनदास, सहजोबाई, दयाबाई, गुलाब साहब, गरीबदास, पतदू साहब, भीसा साहब, और तुलसी साहब आदि संत हैं । इन सबका समय 1448 ई० से 1843 ई० तक माना जाता है । निर्गुण संत परम्परा के अंतर्गत कबीर और उनके अनुयायियों को निर्गुणपंथी कहा गया है ।

निर्गुण संत परम्परा के अंतर्गत संत दरिया साहब का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है । कहीं-कहीं तो ऐसा कहा जाता है कि जो स्थान उत्तर भारत में कबीरदास का है वही स्थान दरिया साहब का बिहार प्रांत में है ।

सहजों उताव्दी के अंत में दरिया नाम के दो संत एक ही समय में हुए हैं । एक दरिया साहब [बिहार वाले] और दूसरे दरिया साहब [मारवाड़ वाले] । दोनों जाति के मुसलमान थे । संत दरिया साहब [बिहार वाले] का जन्म संवत् 1731 माना जाता है ।

मुख्यमान परिवार में जन्म लेकर संत दरिया साहब ने अन्य संतों की भाँति साधना का मार्ग अपनाया । दरिया साहब के काव्य में संत मत के सभी तत्त्व विद्यमान हैं । दरिया साहब अपने को कबीर का अवतार मानते हैं । दरिया साहब पर विशेष प्रभाव कबीर दास का ही पड़ा है । एक स्थावक पर उन्होंने स्वयं ही कहा है :

“ सोई कहो जो कहहि कबीरा ।

दरियादास पद पात्रो हीरा ॥”¹

संत दरिया साहब ने भी दार्शनिक और साधनात्मक शब्दावली का भी वही अर्थ लगाया है जो अन्य संत लगाते हैं ।

रामानुजाचार्य से चलकर रामानन्द जी के माध्यम से कबीरदास को जो शब्दावली प्राप्त हुई थी, वही दरिया साहब को भी प्राप्त हुई ।

संत दरिया साहब के ग्रंथों में भगवान को अनेक नामों से पुकारा गया है । जैसे- सत्य, पुरुष, राम, आत्मा, ब्रह्म, परब्रह्म कर्ता, अत्साह, बैवाह, सत्यगुरु आदि।

संत दरिया साहब के समय में हुआहुत, उँवनीच, तथा साम्प्रदायिकता जोरों पर थी । संत दरिया साहब ने साम्प्रदायिकता को दूर कर हिन्दूमुस्लिम एकता तथा विश्व बंधुत्व के मूल मंत्र का प्रचार दिया । और एक ऐसे मार्ग की स्थापना करनी चाही जहाँ सभी सम्प्रदाय के लोग मिलजुल कर रह सकें ।

संत दरिया साहब ने अन्य संतों की भाँति ईश्वर के सगुण रूप का विरोध करते हुए निर्गुण ब्रह्म का पक्ष लिया है :

" सरगुन निरगुन करो विचारा ,
करो निरवेद वेद नि आरा ।
निरगुन सोह बि नही नहिं भारी ,
अजर अमर देह सुखदाई ॥ " 1

संत दरिया साहब "माया" और "वासना" का विरोध करते हुए कहते हैं कि माया और वासना ने तो कृष्ण, राम, कृष्ण जैसे देवताओं को भी नहीं छोड़ा :

" केते किस्न जगत भरमाई ।
गोप सखा संग गाय चराई ॥" 2
× × × ×
"केते संकर जो सभ करहीं ।
उपजी बिनसी देह सब धरहीं ॥" 3

इसी प्रकार संत दरिया साहब ने "माया" को भगवान से मिलने में सबसे बड़ी बाधकत्वताया है । दरिया साहब कहते हैं कि माया संयुक्त मन आदि काल से अंत तक अपना जाल बिछाए हुए है और उसमें सुर, नर, मुनि आदि को अपने जाल में फँसा रखा है :

" एह मन आदि अंत बलि आवै ।
एह मन सुरमुनि नाच नचावै ॥" 4

[1] डॉ० धर्मन्द् ब्रह्मचारी शास्त्री, दरिया ग्रंथाली, भा० 1 पृ० 95, 108

[2] दरिया साहब [बिहार वाले], दरिया सागर, पृ० 108

[3] — वही — पृ० 78

[4] — वही — पृ० 111

सभी संत जाति-पाँति और वर्णभेद के प्रबल विरोधी रहे हैं । संत दरिया साहब ने भी इसका विरोध करते हुए कहा है :

" जब तुम होते माता गर्भ में रामजनेऊ दीन्हा ।
जो फुरमान सोदाई होते गर्भ सुनती कीन्हा" ।।¹

इसी प्रकार हुआसुत का भी विरोध करते हुए कहा है कि :

" अपने ब्राह्मण बिस्नो होई ।
घर में साकठ मेहरी सोई ॥
मांस खाय संग सुते जाई ।
बाके मुठ गहि घुम्बन लाई ॥ "2

संत कबीरदास की भाँति दरिया साहब कहते हैं कि आत्मा को पवित्र रखना चाहिए । जब तक आत्मा की मलीनता दूर नहीं होती तब तक मनुष्य साधु या संत नहीं बन सकता । यदि मनुष्य दिन-रात आत्मा की शुद्धि की क्रिया को प्रयत्नपूर्वक करता रहे तो एक दिन वह संत महात्मा हो ही जाएगा । इनका मत है कि जिस प्रकार जल की बूंद समुद्र में समा जाती है उसी प्रकार आत्मा भी सत्पुरुष में लीन हो जाती है औः यह तभी सम्भव है जब कि मनुष्य अपनी समस्त वासनाएँ समाप्त कर दे । इसका साधन शरीर है ।

संत दरिया साहब ने शरीर का वर्णन अनेक प्रकार से किया है ।

शरीर नश्वर है अथवा योग साधना करना चाहिए । उनके अनुसार शरीर गगन गुफा के द्वार से आत्मा की मुक्ति को ईष्ट होना चाहिए, मुक्ति के लिए ज्ञान आवश्यक

11] संत कवि दरिया : एक अनुशीलन शब्द , पृ० 95

12] दरिया साहब [बिहार वाले] : दरिया सागर , पृ० 83

है , ज्ञान के लिए गुरु की आवश्यकता होती है , ज्ञान बिना गुरु के सम्भव नहीं है । संत परम्परा के अन्य संतों की भांति संत दरियादास ने भी गुरु का महत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है :

" बिना सतगुरु को भेद बतावे ।

गुप्त यह प्रगट दिखावे ॥ "1

× × × × × ×

" बिना शब्द नहीं होय उषियारा ।

बिन सतगुरु नहीं उतरे पारा ॥ "2

संत दरिया साहब भी आत्मा को ईश्वर का अंश मानते हैं । उनका मत है कि जब शरीर नष्ट हो जाता है तब आत्मा परमात्मा से मिल जाती है ।

संत दरिया साहब ने अवतारवाद को भी स्वीकार किया है ।

एक स्थान पर उन्होंने स्वयं कहा है कि कबीरदास का दूसरा जन्म संत दरिया साहब के य में हुआ :

" फिर कतउ मुँह धरा सरीरा ।

अगम ज्ञान असत रंग हीरा ॥

सत नाम कोन्ह विजारा ।

दरिया नाम से पंड सुपारा ॥ "3

इस दोहे से स्पष्ट है कि दरिया साहब ने अवतारवाद को स्वीकार किया है ।

संत दरिया साहब का जन्म मुसलमान परिवार में हुआ और उन्होंने

11] डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी ज्ञास्त्री, दोगुण, भक्ति हेतु , पृ० 284

12] दरिया साहब, बिहार वाजे, दरिया सागर पृ० 73

संत पद्धति को अपनाकर उस संत परम्परा का अनुसरण किया जो रामानुजाचार्य से चलकर रामानन्द में विकसित होती हुई कबीर आदि में मुखरित हुई । दरिया साहब ने साधनात्मक पद्धति पर क़त दिया । उनमें लगभग वह सभी गुण न्यूनताधिक रूप में अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं जो संतों में दिक्काल से परम्परागत चले आ रहे हैं । कहीं कहीं दरिया साहब ने परम्परा से हटकर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं । ऐसी स्थिति में दरिया साहब में साधनात्मक नवीनता एवं विचारों का स्वच्छीकरण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है ।

निर्गुण संत साहित्य के अंतर्गत कबीर, दादू, रेदास, नानक, मसूकदास, पतनू साहब, गुंवर दास, आदि संतों की गणना की जाती है । ये संत निधि ईश्वर में विश्वास रखते थे । इसीलिए इन्हें निर्गुण कवि या संत कवियों की उपाधि से अलंकृत किया गया है । इनके विचार से ईश्वर की दृष्टि में सम्पूर्ण मानव समान हैं । जाति-पाँति, ऊँच-नीच , बाहुपाठम्बर, ये असत्य भाष्य इन कवियों को रुचिकर नहीं थे । इसीलिए इनके साहित्य को सत्साहित्य की संज्ञा दी गई है । संतों का साहित्य वह सत्साहित्य है जिसमें आत्मज्ञान विषयक सहज स्वभाविक प्रेम है , जहाँ आत्मा की छटपटाहट, मितन की व्याकुलता, सहचर्यजनित प्रेम, प्रेम की पीर और प्रिय वगस की मनोरम प्रशंसी झाँकी मिलती है । संतों के व्यक्तित्व का महत्व उनकी बानियों में परिलक्षित होता है । समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता, रीतिरिवाजों का अनुसरण, जातिपाँति का भेदभाव आदि प्रभावों का विरोध करके संतों ने भावात्मक एकता का उद्घोष करके उस व्यापक सत् से परमतत्त्व को प्राप्त करने का आग्रह किया है ।

तु शोध प्रबंध का विषय " दरिया सागर में चित्रित समाज " है ।

इस महान संत की भाषा में अपने भावों को व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता विचित्र एवं अद्भुत आकर्षण, दार्शनिक चेतना, उत्कृष्ट साधना और प्रतीकों द्वारा अपने परम प्रिय परमात्मा की उत्तमतर संवेदना को परछाने की तीजी दृष्टि परिलक्षित होती है । जहाँ तक आलोच्य संत दरिया साहब का प्रश्न है , वे देश-विदेश में भ्रमण करते रहते थे और जो भी सुंदर तत्व उन्हें मिलते थे उन्हें ग्रहण कर लेते थे । यही कारण है कि अपने समय की समस्त प्रचलित धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक विचारधाराओं और विभिन्न सम्प्रदायों के सारभूत तत्वों को आत्मसात् करके अपनी प्रतिभा तथा अपने प्रयोग के बल से एक अलग, सम्प्रदाय का निर्माण किया । यह उनकी मौलिक देन कहीं जा सकती है । इसी सतर्कता और जागरूकता के साक्षात्कार की प्रेरणा से आलोच्य संत कवि दरिया साहब ने उच्छृंखल वातावरण में भड़क उठने वाली आस्तिकता के विरुद्ध क्रांतिकारी उद्घोष किया था । संक्षेप में दरिया साहब की भावधारा निरन्तर असाम्प्रदायिक सामंजस्यवादी एवं एक सत् की आत्मा से फूट पड़ने वाली किरण है ।

: तृतीय अध्याय :

दरिया साहब का जीवन - परिचय

11] जन्म - समय

12] जन्म - स्थान

13] जाति

14] गुरु

15] शिक्षा तथा विवाह

16] शिष्य परम्परा ।

17] रचनाएँ

दरिया साहब [बिहार वाले] का जीवन - परिचय

निर्गुण संतसाहित्य की सुदीर्घ परम्परा के अंतर्गत दरिया साहब [बिहार वाले] का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। जहाँ तक संत-महात्माओं और साधकों के जीवन परिचय का सम्बन्ध है, यह संतकवि यत्न प्रार्थी नहीं थे। कविता इनके लिए साधना थी, साध्य नहीं। संतजन कविता का प्रयोग अपने सिद्धांत एवं अनुभूति को वाणी देने के लिए ही किया करते थे। यही कारण है कि ये संत अपने विषय में अपनी बानियों में बहुत कम लिखते थे। हाँ, इतना अवश्य था कि कहीं-कहीं सम्मान-सम्बन्ध सूचक सम्बोधन इनकी बानियों में अवश्य मिलते हैं। साथ ही अनुभूतियों और किम्वदन्तियों के आधार पर इन संतों का जीवन-परिचय तैयार किया जाता है जो उपयुक्त नहीं जान पड़ता। आज के वैज्ञानिक युग में ऐसा उपयुक्त नहीं जान पड़ता। हमारे पास केवल एक ही उपाय रह जाता है कि हम अंतःसाक्ष एवं बाह्य साक्ष के आधार पर इन संतों के जीवन परिचय का अवलोकन करें। संत कबीर, रैदास, नानक, दादू आदि के साथ-साथ संत दरिया साहब के विषय में भी यही धारणा उपयुक्त जान पड़ती है। संत दरिया साहब [बिहार वाले] की बानियों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन पर संत कबीर दास का विशेष प्रभाव है। वे स्वयं स्थान-स्थान पर इस बात का वर्णन भी करते हैं :

“ ताहि छोषि जो ओजहि कबीरा ।

बरठ निरन्तर समय गंभीरा ॥”¹

संत दरिया साहब के जीवन - परिचय को निम्नांकित शीर्षकों

के माध्यम से अध्ययन करना उपयुक्त है :

11]	जन्म - समय
12]	जन्म - स्थान
13]	जाति
14]	गुरु
15]	शिक्षा तथा विवाह
16]	शिष्य परम्परा
17]	रचनाएँ

11] जन्म - समय

निर्गुण काव्य-परम्परा में जिन दो दरिया नाम के संतों का उल्लेख है, उनमें से एक बिहार के और दूसरे मारवाड़ के माने जाते हैं ।

आलोचक-संत दरिया साहब [बिहार वाले] के जीवन-काल के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं । कुछ विद्वान इन्हें सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, और कुछ इन्हें अठारहवीं शताब्दी में अवतरित हुआ बताते हैं :

हिन्दी साहित्य कोश के सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा संत दरिया साहब [बिहार वाले] के जीवन-काल के विषय में लिखते हैं : "इनका जन्म सन् 1634 ई० में हुआ और मृत्यु सन् 1780 ई० में हुई । "

डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी "दरिया साहब का जन्म सं० 1731

और मृत्यु सं० 1837 मानते हैं ।¹

डॉ० ओम्प्रकाश शर्मा "दरिया साहब का जन्म सन् 1674 ई० और मृत्यु 1780 ई० मानते हैं ।²

संत दरिया साहब के जीवनकात् के सम्बन्ध में उनकी रचना "ज्ञानदीपक" में उल्लेख मिलता है :

" संवत सोलह सौ इक्कानवे , कातिक पूरन जान ।

मातृ गर्भ ते प्रगट भय , रहे दो परी जान ॥"

बाह्य साक्ष्य की तुलना में अन्तः साक्ष्य अत्यधिक प्रामाणिक होता है । दरिया साहब की मृत्यु के संबंध में अंतःसाक्ष्य के आधार पर सहसरानी का अंतिम पद सहायक सिद्ध होता है :

" भादो बदी चौथि वार सुक्र , गसन कियो छपलोक ।

जो जन सब्द विवेकिण , भेटेउ सकउ सब लोक ॥

संवत अठारह सौ सैतीस , भादों चौथ अंधार ।

सवा जाम जब रैनिगी , दरिया गोन विचार ॥ ³

यदि हम हिन्दी साहित्य को१ के सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

के द्वारा बताया गया दरिया साहब का जन्म सन् 1634 ई० और मृत्यु सन् 1780

११॥ डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, द०१० प्रथम भाग, पृ० 2

१२॥ डॉ० ओम्प्रकाश शर्मा, संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, पृ० 49

ई० मान लें तो दरिया साहब की आयु 146 वर्ष बैठती है और डॉ० धर्मन्द्र प्रह्लादचारी शास्त्री के हिसाब से इनकी आयु 106 वर्ष बैठती है और इसी प्रकार डॉ० ओमप्रकाश शर्मा के हिसाब से भी दरिया साहब की आयु 106 वर्ष ही बैठती है ।

दरिया साहब के जन्म और मृत्यु के संबंध में "ज्ञानदीपक" और "दरिया सागर" के दोहों पर विचार करने से दरिया साहब की आयु 146 वर्ष बैठती है । जोकि एक साधारण व्यक्ति के लिए संभव नहीं जान पड़ती । संतों के विषय में इस प्रकार अतिशयोक्तियाँ सर्वत्र मिलती हैं ।

मेरे विचार से दरिया साहब इस संसार में 106 वर्ष ही जीवित रहे । इस प्रकार इनका जन्म सन् 1674 ई० और मृत्यु सन् 1780 ई० ही सही है ।

उपरोक्त विद्वानों के मतों और उनकी रचनाओं से प्राप्त इनके जीवनकाल से संबंधित सामग्री के अध्ययन के परचाह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संत दरिया साहब [बिहार वाले] का जीवनकाल सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल और उठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में होना चाहिए ।

॥2॥ जन्म-स्थान

संत दरिया साहब [बिहार वाले] का जन्म-स्थान विद्वान्क मान्यता पर विद्वान् एकमत हैं । सामूहिक त्त से अनेक विद्वानों के अनुसार - संत दरिया साहब [बिहार वाले] के वंशज उल्लैन निवासी थे । वे मातया से आकर बिहार प्रांत में शाहबाद जिले के धरकन्डा नामक ग्राम में बस गए थे । यहीं पर संत दरिया साहब का

जन्म हुआ । इस संबंध में फ्रांसिस बुकानन साहब, पं० सुधाकर दिवेदी, बाबू बालेश्वर प्रसाद, डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, परशुराम कुर्वेदी आदि सब एकमत हैं । डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री के मतानुसार—"दरिया साहब [बिहार वाले] का जन्म बिहार प्रांत के धरकन्धा नामक ग्राम में पीरनशाह दर्जी के यहाँ हुआ ।"¹ इनके जन्मस्थान के संबंध में डॉ० ओम्प्रकाश के कथन से भी पुष्टि होती है : "दरिया साहब का जन्म साहबाद जिले के धरकन्धा नामक ग्राम में हुआ था।"²

संत दरिया साहब [बिहार वाले] का निवासस्थान भी साहबाद जिले का ग्राम धरकन्धा ही रहा । डॉ० ओम्प्रकाश शर्मा के अनुसार : "दरिया साहब अपने जीवन के अंत में भी धरकन्धे में ही रहे।"³ अतः स्पष्ट है कि दरिया साहब धरकन्धे के अतिरिक्त कहीं और नहीं गए ।

[3] जाति

संत दरिया साहब [बिहार वाले] जाति के मुसलमान दर्जी थे । आपका जन्म पीरनशाह दर्जी के यहाँ हुआ था। इनकी जाति के संबंध में विद्वानों के मत प्रसंगिक हैं : डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री के अनुसार—"दरिया साहब [बिहार वाले] का जन्म बिहार प्रांत के धरकन्धा नामक ग्राम में पीरनशाह दर्जी के यहाँ हुआ था।"⁴ और फ्रांसिस बुकानन ने ई० सन् 1809-10 में साहबाद जिले का भ्रमण किया जिसमें दरिया साहब को एक मुसलमान दर्जी कहकर उल्लेख किया है ।⁵

[1] डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री: द० ग्रा० भा० 2, पृ० 8

[2] डॉ० ओम्प्रकाश शर्मा: संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, पृ० 49

[3] — वही —

[4] डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री: द० ग्रा० भा० 1, पृ० 8

— — — — —

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दरिया साहब जाति के मुसलमान दर्जी थे । इस संबंध में सभी विद्वान एकमत हैं ।

141 गु

भारतीय संत-परम्परा में और विशेषकर निर्गुण संतों की परम्परा में गु का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । संत दरिया साहब ने भी गु का स्थान सर्व-श्रेष्ठ माना है । कबीर आदि संतों की भांति संत दरिया साहब गु की महिमा का वर्णन करते हुए लिखते हैं :

“ बिना शब्द नहि होय उषियारा ।

बिन सद्गु न उतरे पाररा । ।”¹

एक और स्थान पर संत दरिया साहब कहते हैं कि गु को सब कुछ समर्पित कर देना चाहिए क्योंकि गु ही साक्षात् परमेश्वर है :

“ गु कः सर्वस दीषिए ,

तन मन उरख्यों सीस ।

गु बहिजां गु देव है ,

गु साहब जादीस । ।”²

संत दरिया साहब का विचार है कि गु की जाति नहीं देखनी चाहिए बल्कि उसके गुणों को ही देखना चाहिए । एक स्थान पर उन्होंने कहा है -

॥॥ दरिया साहब ॥दरिया सागर, पृ० 73

121 — वही — पृ० 387

गुण के संबंध में जो जातिप्रति की सोच करता है , वह पाप का भागी बनता है :

" सद्गुण जातिप्रति नहि जीये ।

जाति सोये तेहि पातल दीये ॥"¹

संत दरिया साहब के मतानुसार शिष्य इस भवसिन्धु में डूबती हुई नौका पर आकर व्यक्ति के समान है और गुण ही नौका पार लगा सकता है :

" भी सैधु त्रिविध प्रकार जल वोहित मुक्ति साध ।

गुण सत गुण कनहारिया खेनि जामे हाथ ॥"²

संत दरिया साहब ने सद्गुण को ही अपना गुण माना है और इसी गुण से दीक्षा ग्रहण नहीं की । अतः सद्गुण ही उनका गुण है क्योंकि उन्होंने गुण का नामोल्लेख नहीं किया है ।

15] शिक्षा तथा विवाह

दरिया साहब की शिक्षा के संबंध में कोई प्रमाण नहीं मिलता, वस्तुतः उस समय शिक्षा का इतना प्रचलन भी नहीं था । अतः दरिया साहब ने घर पर शिक्षा ग्रहण की होगी । दरिया साहब केवल हिन्दी जानते थे और थोड़ा बहुत फारसी का भी ज्ञान उन्हें था ।

दरिया साहब अधिक पढ़े-लिखे न होने के कारण स्वयं लिखते नहीं थे । वे पद्यों को गाते जाते थे और उनकी शिष्य-मंडली जो उनके साथ रहती थी के

1] दरिया साहब [विहार वाजे], दरिया सागर, पृ० 86

कुछ विषय उनकी बानियों को सिमिबद्ध करते जाते थे ।

संत दरिया साहब के विवाह के सम्बन्ध में समस्त विद्वान एकमत हैं ॥ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार :—संत दरिया का विवाह नौ वर्ष की आयु में होगया था ।¹

डॉ० श्रीमप्रकाश शर्मा के मतानुसार "संत दरिया का विवाह नौ वर्ष की अवस्था में ही गया था । इनकी पत्नी का नाम शाहमती था ।"²

अतः स्पष्टतः संत दरिया साहब का विवाह नौ वर्ष की अवस्था में शाहमती नामक कन्या से हो गया था । उस समय बाल विवाह की प्रथा थी, अतः अल्पायु में इनका विवाह होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

॥6॥ शिष्य परम्परा

संत कबीर की भांति संत दरिया साहब [बिहार वाले] ने भी ऐसे पंथ का प्रतिपादन किया जिस पर चलकर समाज के समस्त व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के रह सकें । संत दरिया साहब मध्य युग के उन संतों में से थे जिन्होंने एकता तथा परस्पर प्रेम का प्रचार किया ।

संत दरिया साहब को शिष्य परम्परा के अंतर्गत हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई का कोई भेदभाव नहीं था । उन्होंने सभी धर्मों के लोगों को शिष्य बनाया ।

संत दरिया साहब की शिष्य परम्परा के अंतर्गत कुछ सिद्धांतों का

॥१॥ हिन्दी साहित्य कोष, भाग-2 पृ० 229

॥२॥ संतसाहित्य की तौकिक पृष्ठभूमि, पृ० 49

कठोर पातन आवश्यक था जैसे : अहिंसा, गन्नादि परिहार, इन्द्रिय निरोध, निरहंकारता, स्वयमारोपित, निष्कपता, और सत्यवादिता निर्धनता और जातिभेद का परित्याग आदि ।

संत दरिया साहब के प्रमुख शिष्य तथा शिष्यों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों के मत इस प्रकार हैं :

डॉ० परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार -" संत दरिया साहब के शिष्यों की संख्या 36 थी और प्रमुख शिष्य केवतदास, छगदास, मुरलीदास, गुपीदास, और केवदास प्रमुख थे ।"¹

डॉ० रामकुमार वर्मा के मतानुसार : " संत दरिया साहब के शिष्यों की संख्या 36 थी ।"²

" दरिया साहब के शिष्यों की संख्या 36 थी तथा प्रमुख शिष्य मुरलीदास, मनीदास, वजीरदास, केवतदास तथा दत्तदास थे ।"³

अतः हम इस विषय पर पहुँचते हैं कि संत दरिया साहब के प्रमुख शिष्य - केवतदास, छगदास, मुरलीदास, केवदास, दत्तदास, मनीदास, वजीरदास, गुपीदास इत्यादि थे ।

17] रचनाएँ

संत दरिया साहब बिहार गले! अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे ।

[1] डॉ० परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० 567

[2] डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० 282

[3] डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री : द०ग०, भाग-2, पृ० 6

उनकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई । उच्चतम शिक्षा प्राप्त न होने पर भी संत दरिया साहब ने अनेक काव्यकृतियों की रचना की । ये रचनाएँ इस बात का सबल प्रमाण हैं कि दरिया साहब कम पढ़े-लिखे होने पर भी उत्पत्ति बुद्धिमान एवं विद्वान थे । दरिया साहब की रचनाओं के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि इन्होंने कुल 20 पुस्तकें की रचना की है ।

डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री ने इनकी रचनाएँ बीस बताई हैं । उन्होंने इनकी एक सूची भी दी है ।¹

हिन्दी साहित्य कोश के प्रधान सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने भी इनकी रचनाओं की संख्या बीस बताई है ।²

दरिया साहब की "ग्यान सरोद" नामक रचना के एक पद से पता चलता है कि "ज्ञान स्वरोदय" से पहले अठारह पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं ।³

विभिन्न विद्वानों तथा प्रमाणित स्रोतों के आधार पर दरिया साहब की रचनाएँ इस प्रकार हैं :

1. दरिया सागर ।
2. प्रेम मूल ।
3. ज्ञान रत्न ।
4. ज्ञान दीपक ।

॥१॥ डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, द०ग०, भाग-१, पृ० 36

॥२॥ हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 229

॥३॥ ग्रन्थ स्वरोदय कहा बरानी । तब सरोद कई दिन गुमानो ॥

5. ज्ञान स्वरोदय ।
6. भक्ति हेतु ।
7. ज्ञान मूल ।
8. ब्रह्म विवेक ।
9. अज्ञान ।
10. अमरसार ।
11. ब्रह्म चैतन्य ।
12. गणेश गोष्ठी ।
13. काल चरित ।
14. दरिया नामा ।
15. मूर्ति उखाड़ ।
16. निर्भय ज्ञान ।
17. शब्द या बीजक ।
18. सहस्रयानी ।
19. विवेक सागर ।
20. यज्ञ समाधि ।

दरिया सागर

दरिया साहब [बिहार वाले] की बहुदर्शित रचनाओं में "दरिया सागर" का विशेष स्थान है । दरिया साहब की प्रथम रचना "दरिया सागर" है ।¹

[1] डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री : संत कवि दरिया , एक अनुशीलन, पृ० 41, प्रथम भाग

हिन्दी साहित्य कोश के सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार:

"दरिया सागर 1910 ई० में [वेतवेडियर प्रेस, इलाहाबाद] द्वारा प्रकाशित हुआ है ।"¹

"दरिया सागर" का रचनाकाल [लिपिकाल] 1266 य० 1916

वि० यावाद कृष्ण है । इसके लिपिकार गुं प्रसन्नदास हैं । इसकी मूलप्रति महन्त बसुरीदास से प्राप्त हुई है ।²

संत दरिया साहब ने प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से विभिन्न पदों, दोहा, साखी, सोरठा, चौपाई, आदि में रचना की है ।

हमारे विचार से दरिया सागर में कुल पदों की संख्या 1297 है। जिसमें 106 दोहे या साखियाँ, 16 सोरठा, 1160 चौपाई और 15 छंद हैं ।

इस ग्रंथ में कवि ने प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से अपने सुकुल वाले अवतार की बाल्यावस्था का वर्णन किया है । इस ग्रंथ में कवि ने सत्गुरु का महत्त्व, माया, मूर्ति, पूजा आदि का वर्णन किया है :

" बिना सब्द नहिं होत उजियारा ।

बिना सत्गुरु नहिं उतरे पारा ॥

हिन्दू बुरक दूनों पुताना ।

दूनों बाढ़ि विवादि निस्मानह ।"³

प्रेममूल

संत दरिया साहब की रचनाओं में "प्रेममूल" भी अपना महत्वपूर्ण

[[[हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2, पृ० 229]2] डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, द० प्र० भा०

स्थान रखते हैं । प्रेममूल 1934 ई० में शांति प्रिन्टिंग प्रेस द्वारा प्रकाशित हुई ।¹

हमारे विचार से "प्रेममूल" में दोहा या साखी 25 चौपाई 237, पद 262 और पंक्तियों की पूरी संख्या 524 है ।

इस ग्रंथ में कवि ने कीट-पतंगों और पशु-पक्षियों के माध्यम से भगवान और सद्गुरु के प्रति प्रेम दर्शाया है ।

" प्रेममूल में एक स्थान पर दरिया साहब कहते हैं कि साहस ही प्रेम का जीवन है । सद्गुरु ने इस मार्ग पर बहुत ही सजग होकर पैर रखने को कहा है । यह मार्ग तलवार की धार की समान है ।"²

इस प्रस्तक में दरिया साहब ने यह वर्णन किया है कि बिना प्रेम के भक्ति, ज्ञान दोनों में से कोई भी संभव नहीं है अर्थात् आध्यात्मिक उत्कर्ष का मूलमंत्र प्रेम है ।

दरिया साहब ने प्रेममूल में तीन प्रकार के प्रेम का वर्णन किया है:

॥क॥ ईश्वर के प्रति प्रेम ।

॥ख॥ गुरु के प्रति प्रेम ।

॥ग॥ उस गुरु के प्रति प्रेम जो गुरु-मंत्र सिखाता है ।

॥१॥ हिन्दी साहित्य कोष, पृ० 229

॥२॥ प्रेम मारग बांकी बड़ी समुझि चढ़े जोइ जानि ।

उ में साइते की धार है , सत् गुरु कहा बजानि ॥

अतः भगवान की प्राप्ति का मूल साधन प्रेम है । बिना प्रेम के भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती । उनका विचार है कि प्रेम के अभाव में सप्तता अथवा प्रसिद्धि अत्यंत कठिन है :

" ज्यों तगि प्रेम जुगित नहिं होई ।

तब तगि बास पाँव नहिं कोई ।।"¹

ज्ञानरत्न

"ज्ञानरत्न" का रचनाकाल आवाद शुक्ल 5, 1216 फा० 1866 वि० 1834 वि० है । इसके छिपिकार प्रताप शर्मा फकीर हैं । इसकी मूलप्रति श्री खुनायदास से प्राप्त हुई थी ।²

इस सम्पूर्ण ग्रंथ में दोहों की संख्या 125, सौरठा 23, चौपाई 1871, छन्द 47 और 2066 पद हैं ।

इस रचना के अंतर्गत ज्ञान, निर्गुण, सगुण, माया, साधु, सद्गुरु, अवतार, मुक्ति, सत्नाम, तथा अधिकांश भाग में रामायण की कथा तथा दरिया और कुत्ता की परस्पर बातचीत आदि का वर्णन मिलता है ।

इस रचना में अधिकतर प्रसंग महाभारत के हैं - राम और लक्ष्मण का विदा होना, दशरथ का अचेत होना, कैकेई संवाद, हनुमान का प्रस्थान, अंकाकाण्ड, दरिया का जगत में आगमन का वर्णन सविस्तार किया गया है । उन्होंने परमार्थ एवं

¹।। डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मवारी शास्त्री: संतकीर्ति दरिया स्व अनुसूचन, पृ० 44

²।। ——— वहीं ———

स्वार्थ को स्पष्ट करने के लिए बड़े पानी का उदाहरण दिया है :

" परमारथ करि स्वारथ नाही ,

रथों जत बुझा उबारहु नाही ।"¹

ज्ञानदीपक

"ज्ञानदीपक" 1936 में प्रकाशित हो चुकी थी ।²

इस ग्रंथ में 214 दोहे, 51 सौरठा, 2228 चौपाई, 102 छंद, 2595

पद और पंक्तियों की पूरी संख्या 5958 है ।

दरिया साहब की रचनाओं में बीजक के बाद यह सबसे बड़ा ग्रंथ

है । यह अन्य रचनाओं की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ।

इस ग्रंथ में संत दरिया साहब ने ऐसे गुण का स्थान नरक बताया

है जो अपने शिष्यों के दुःखों का निवारण न करके धनसंचय करते हैं :

" दर्ज हरहि पर सौक ना हरहीं ।

सो गुण नर्क अधोरहि परहीं ।।४³

स्थूल रूप से ज्ञानदीपक में सद्गुरु एवं संतों की वंदना, निर्गुण एवं

त्रिगुण ज्ञान के माध्यम से मुक्ति, अमर पुर के आनंद का वर्णन, भिन्ता, तीर्थ एवं अन्य

पाछंडों का उपहास, आत्मनिरोध एवं अहिंसा, ईश्वर, माया इत्यादि विषयों पर

॥१॥ डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री : संतकवि दरिया एक अनुशीलन, पृ० 16

॥२॥ हिन्दी साहित्य कोष, भा० 2 , पृ० 229

॥३॥ डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री : भा० 1 पृ० 6

कुम्भज भारद्वाज के मध्य वार्तालाप, राधा शीतनिधि की कन्या पर नारद के आसक्त होने की कथा, शिव एवं पार्वती के मध्य देवता, मानव एवं अन्य प्राणियों की संरचना के विषय में वार्तालाप, सद्गुरु एवं उनके विषय में कुम्भज और नारद का वार्तालाप, कुम्भज, शिव एवं पार्वती मिलन, दरिया के विभिन्न जन्मों के आत्मचरित इत्यादि की अपनी मधुर वाणी में मुखरित किया है ।

ज्ञान स्वरोदय

"ज्ञान स्वरोदय" की रचना 1934 ई० में संत कवि दरिया एक अनुशीलन" में छपकर सामने आई । ¹

इसका लिपिकाल 26 सावन, 1266 फ०, 1916 वि० में हुआ ।

इसकी मूलप्रति महन्त चतुरीदास से प्राप्त हुई । ²

जैसा कि रचना के शीर्षक से स्वतः विदित होता है कि इसमें "ज्ञान स्वरोदय" अर्थात् स्वास प्रक्रिया के विषय का पूर्ण ज्ञान निहित है । इसके अतिरिक्त इस रचना में ईश्वर, आत्मा, शरीर, पुनर्जन्म, मुक्ति, स्वर्ग, नरक, माया, ज्ञान, भक्ति, साधु, सद्गुरु, संयम, आत्मनिरोध, आदि गुणों के अतिरिक्त हिंसा, मायान आदि आगुणों का भी विषय रूप में वर्णन किया गया है । पाण्डे मिथ्या, कर्मकाण्ड, इत्यादि विषय भी "ज्ञान स्वरोदय" में विद्यमान हैं । मूल रूप में इस रचना में स्वासप्रक्रिया-विज्ञान का वर्णन किया गया है । मूलतः "ज्ञान स्वरोदय" फ़ारसी ग्रंथ दरियानामा

[1] हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2, पृ० 229

[2] डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री: द० ग० भाग-2, पृ० 9

का विशद पान्तर उद्धृत होता है । स्त्रीवध जीववध को यह महापाप बताते हैं :

" जीववध महापाप अतिभारी ।

पंडित जानुना कहे बिदारी ॥⁶¹

भक्तिहेतु

"भक्तिहेतु" का रचनाकाल 1893 वि० 1937 वि० माना गया है । इसके लिपिकार पी. साम्बर दास, हीरादास, उमरावदास हैं । इसकी मूलप्रति महंत चतुरोदास जी से प्राप्त हुई ।²

इस ग्रंथ में 52 दोहे अथवा साठियां, 477 चौपाई, पदों की पूरी संख्या 529 एवं 1058 कुल पंक्तियां हैं ।

संत दरिण साहब ने इस रचना में पुरुष-पशियों एवं कीट जगत से उद्धृत उदाहरणों के माध्यम से भक्ति एवं ज्ञान का उपदेशमय वर्णन किया है । उन्हें बौर बुरे जोगों का चरित्र-चित्रण, साधु संगति, सद्गुरु की स्तुति, माया एवं उसकी शक्ति ब्रह्मिन्ता और दया नारी एवं संपत्ति के जालबन्ध का त्याग निर्गुण एवं त्रिगुण, अमरपुर की दिव्यदृष्टि, पंडितों के पाखंडों, भाईचारा और जातिपांति का विरोध, सत्सुख के नास्तिक अवतारके रूप में दरिण और उनका मित्र और उनके मध्य वार्तालाप, लठोग एवं अन्य पाखंडों का विरोध एवं विभिन्न लोकों से होते हुए आत्मा यो हैस की

[1] डॉ० धीरेन्द्र ब्रह्मदारी शास्त्री, द० १०, भाग 1, पृ० 20

[2] — वही —

भाग 2, पृ० 9

अमरपुर यात्रा का मनमोहक एवं स्वच्छन्द वर्णन किया है ।

ज्ञानमूल

"ज्ञानमूल" का रचनाकाल 1991 ष० = 1941 वि० कार्तिक कृष्ण 11 , 1964 वि० और 1899 वि० है । इसके लिपिकार हीरादास, सुंदरदास, फकीर दास आदि हैं । इसकी मूलप्रति महंत चतुरीदास जी से प्राप्त हुई थी ।¹

इस पुस्तक में दोहों की संख्या 44 , चौपाई 426 और पदों की पूरी संख्या 470 है और पंक्तियों की पूरी संख्या 940 है ।

संत दरिया साहब ने इस रचना में त्रिगुण देवों से सत्पुत्र की भिन्नता, सत्पुत्र का स्वर्ग से जम्बूद्वीप आकर सुकुल के प्रचार के लिए उनकी रक्षा करना, हिंसा की निन्दा, विश्व की अनेकता, नदक की यातनाएँ, वासनाओं को वशीभूत करना, स्वर्ग एवं नरक का मूल अर्थ, सद्गुरु का सम्मान, कबीर एवं नामदेव के आदर्शमयी संत होने का वर्णन, साधु का धरित्र, माया के परदे, यम का अधिकार, ज्ञान के माध्यम से मुक्ति की प्राप्ति, स्त्री एवं सम्पत्ति की निन्दा, जाति-पाँति का खंडन-मंडन, सत्पुत्र दरिया अपना पुवराज नियुक्त करना, छपलोक के सौंदर्य एवं कमत्कार का वर्णन, दरिया के दिव्य शक्तियों का आश्चर्यपूर्ण वर्णन, परिवार एवं शिष्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन एवं मन की व्यापक प्रकृतता का अति सुंदर वर्णन किया है ।

ब्रह्मविवेक

"ब्रह्मविवेक" का रचनाकाल 1266 ष० = 1916 वि०, 1289 ष०=

1939 वि० है । इसके लिपिकार हीरादास, तातधारी दास हैं तथा इसकी मूलप्रति महंत चतुरोदार से प्राप्त हुई । ।

मेरे विचार से इस रचना में दोहों की संख्या, 36 चौपाई 519, पद्यों की पूरी संख्या 555 और कुल पंक्तियों की संख्या 1110 है ।

ब्रह्मविवेक में दरिया साहब ने सत्सुख का स्वप्न विवेक एवं बुद्धि की आवश्यकता, पाऊँ का बहि कार, सत्-असत् का वर्णन, हठयोग के विषय में सहज-यांग, हृत्लोक के प्रमोद-प्रमोद का वर्णन, आत्मा की शुद्धि की आवश्यकता, भूतलोक का निराकरण, भवानी और ब्रह्म के मध्य वार्तालाप, तमस्या के परचाह्मी ब्रह्म दर्शन का अभाव, सीता के राम और सत्सुख में अंतर, राम की कथा का सूक्ष्म प्रसंग, नारदों के प्रति विचार और ब्रह्मचर्य की महानता, सच्चिदि एं क्रोध के भयंकर दोष, मनु की कामनाओं की उपापकता, एवं प्रवृत्ति, सत्नाम और सद्गुण का गुणानुवाद, सत्सुख से राधा विष्णु और अन्य गोपियों के मध्य रासलीला करने वाले कृष्ण से भिन्नता सच्चा योग एवं ज्ञान-गरिमा का वर्णन शंखी शशि की कथा, जो एक कुमारी पर मोहित हो गए थे, सामाजिक असमानताओं का पक्षार्थ चित्रण, मन का प्रभाव, हंस की आत्माओं के उदार हेतु सुदुत का अनेक रूपों में अवतरित होना तथा स्वयं दरिया साहब के अंतिम रूप में अवतरित होने का वर्णन किया है ।

अज्ञान

"अज्ञान" पोथी के हस्तलेख का समय 1864 वि०, 1893 वि० है ।

इसकी दो प्रतियां प्राप्त हैं । मूल उद्धरित रूप "आज्ञान" मिलता है ।

इस ग्रंथ में दोहों की संख्या 52, चौपदाईं चौपाईं 414, पंक्तियां 466 एवं पंक्तियों की पूरी संख्या 932 है ।

आज्ञान में दरिया साहब एवं सत्पुरुष के मध्य वार्तालाप पर आधारित समस्त प्रसंगों को विद्वत्तापूर्वक काव्य-बाजी में मुहूरित किया गया है । इन प्रसंगों के अंतर्गत कवि ने माया की व्यापकता, निर्गुण, त्रिगुण, अभ्युलोक का वर्णन, सृष्टि की उत्पत्ति, सत्पुरुष के परस्पर संगर्ष का वर्णन, दयादीप में सत्पुरुष का दरिया के पूर्व के अवतार लेकर, अब्दुल्ला की राख त आगमे को कहना, सोलह भाइयों की राज्यसीमा के संबंध में वार्तालाप अब्दुल्ला की भिक्षुता, दोनों का सत्पुरुष के समीप आना और जोग जीत के अनुयायियों का सत्पुरुष लोक का अधिकारी सिद्ध करने का प्रयत्न करना, भक्तों के धरित्र, पाप एवं पाउंड का त्यागना, प्रेम एवं भक्ति आदि समस्त प्रसंगों का कवि ने अपनी लेखनी द्वारा वमत्कारपूर्ण ज्ञान प्रदान किया है ।

अमरसार

इस पोथी के हस्तलेख का समय 1251 फसली, 1900 वि० है और कई प्रतियां प्राप्त हैं ।¹

इस ग्रंथ में दोहों की संख्या 36, सोलठा 8, चौपाईं 365, छन्द 8, पंक्तियां 417 तथा पंक्तियों की पूरी संख्या 850 है ।

अमरपुर में सत्पुत्र-सद्गुरु का स्तुति गान, दरिया का सत्पुत्र साक्षात्कार, भक्ति संबंधी तर्क-वितर्क, पाण्ड की निन्दा, अमरपुर और उसका गौरव, ज्ञानपथ, सगुण अवतार, एवं निर्गुण सत्पुत्र, माया का जाल, हिन्दू देवताओं, रीतियों और संतों पर उनका प्रभाव, श्वास-प्रक्रिया एवं प्राणायाम का सुनिर्दिष्ट रूप का वर्णन किया गया है। एक स्थान पर पत्तिव्रता के संबंध में उनके विचार, प्रस्तुत हैं :

" पतिवरता पतिव्रता जो कबई ,

हन्, जाए बरत जो तरई ।"।

ब्रह्मदेतन्य

इसके रचनाकाल के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है। इसकी भाषा संस्कृत के मिश्रित रूप में दृष्टिगोचर होती है। इसके संबंध में बुकानन ने 1910 ई० उल्लेख किया है। अनेक विद्वान ब्रह्मदेतन्य को कोकिल साहब की रचना भी स्वीकार करते हैं।

इस रचना में पद 309 और पंक्तियों की संख्या 756 है।

इसमें कवि ने निर्गुण और सगुण विहंगम एवं पिपासिक योग, सद्गुरु की कीर्ति, अहिंसा एवं पाण्ड की निन्दा, माया एवं मन की बंधन अवस्था, अमरपुर एवं उसके अमोद-प्रमोद का वर्णन ही नहीं किया अपितु जैतवाद एवं वैतवाद का भी युक्ति-संगत वर्णन किया है। कुछ पंक्तियाँ प्र टिप्पण हैं :

प्रारम्भ : सत्त्वब्रह्मम् निष्पन्नं सदागुणवन्तम् ।

गर्धन ऊर्ध्वं सुमध्ये न रान्तम् ॥

अन्तः : पूर्णं सत्त्वं सत्त्वं मेद मेदे

स्वेतं ब्रह्म स पञ्चम् ।

दरिया भाष्यम् सत्तसारम्,

ज्ञान ब्रह्म नि पञ्चम् ॥

गणेश गोष्ठी

इस रचना के हस्तलेख का समय 1864 वि० 1347 फसली है । प्रायः

उद्धरित रूप में "गनसगोष्ठी" दृष्टिगत होता है ।¹

इस रचना में दोहों की संख्या 13, चौपाई 134, पद 147 एवं

पंक्तियों की पूरी संख्या 294 है ।

संत दरिया साहब की इस कृति में गांव के सरदार के राजगुरु

गणेश पंडित और दरिया साहब के मध्य हुए वाद-विवादों को काव्य रूप में वर्णित

किया गया है । इन वादविवादों के अंतर्गत कवि ने मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, जातिप्राप्ति

एवं साम्प्रदायिक भेदभाव, वेद, ईश्वर, अवतार, स्वर्ग एवं माया-संबंधी विषयों पर

अपनी लेखनी द्वारा वमत्कुल वर्णन करके अपनी विद्वता का सबल एवं सशक्त धरिष्य

प्रस्तुत किया है । उनका विचार है कि ऊँचीच, जातिप्राप्ति का कोई महत्त्व नहीं ।

सब एक हैं और एक समान हैं : "हिन्दू तुर्क दुई तुम कहई,

हम में तुम में दूजा = अहई ॥²

॥१॥ डॉ० धर्मनंद ब्रह्मचारी शास्त्री: २०१०, भाग १ पृ० ५

॥२॥ — वही —

काल चरित्र

"काल चरित्र" हस्तलेख का समय 1990 वि० है । मूल रूप में केवल एक ही प्रति प्राप्त है ।¹

इस रचना में सौरठों की संख्या 16, चौपाई 735, छंद 32, पदों की संख्या 783 और कुल पंक्तियां 1804 हैं ।

इस ग्रंथ में दरिया साहब और काल के मध्य हुए युद्ध का सजीव वर्णन है । काल को साधु अथवा पंडित के वेष में प्रस्तुत किया गया है । अन्य रचनाओं की भांति दरिया साहब ने काल चरित्र में भी सगुण-निर्गुण, सद्गुरु, योग, वासनाओं का निराकरण, पाखंड की निन्दा आदि विषयों का मार्मिक ढंग से चित्रण किया है ।

दरियानामा

इस रचना के हस्तलेख का समय 1260 फसली है । केवल एक ही प्रति प्राप्त है । जिसकी लिपि फारसी है ।²

इस ग्रंथ में पदों की संख्या 165 तथा पूरी पंक्तियों की संख्या 330 है ।

वस्तुतः दरियानामा "ज्ञानस्वरोदय" का लिप्यान्तर मात्र है ।

यह "ज्ञानस्वरोदय" के शीर्षक को छोड़कर शेष अंश का नागरी लिपि से फारसी लिपि में लिप्यान्तर मात्र है । इसके अतिरिक्त दरियानामा में न्यूनाधिक रूप में मौलिक तथ्यों

॥१॥ डॉ० धर्मन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री: द० ग० भाग -1 पृ० 6

॥२॥ ——— वही ———

का भी उल्लेख है । इसके पदों में मुसलमानों के आधार-स्तम्भ ग्रंथ कुरआन शरीफ के अंश भी प्रयोग में लाए गए हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ में कवि ने मूल रूप से मुसलमानों को सम्बोधित किया है । कुछ पंक्तियाँ प्रष्टश्य हैं :

आरंभ : बनाम् आँ के वस् फस कुत हो बस्ताह ।

नेक़ुबेनामा असु अलु हम्दो तिल्लाह ॥

अंत : अया दरिया बे तो बे" यके नीस्त ।

तु हस्ती हर वैं हस्ती रा शके नीस्त ॥

मूर्ति उठाड़

इस रचना के हस्तलेख का समय 1870 वि० है अथवा 1342 फसली है ।¹

विभिन्न विद्वान "श्रीमन् मूर्ति उठाड़" को फक्कड़दास की रचना मानते हैं किन्तु "मूर्ति उठाड़" का गहन अध्ययन इस बात का साक्षी है कि यह रचना दरिया साहब की अपनी रचना है क्योंकि इसके पदों में विभिन्न स्थानों पर दरिया का उल्लेख किया गया है ।

इस रचना में पदों की संख्या 534, भारवी 46, चौपाई 488 एवं पंक्तियों की पूरी संख्या 1068 है ।

इस रचना का मूल उद्देश्य मूर्तिपूजा का खंडन एवं उसकी निरर्थकता को स्पष्ट करना है । इस रचना में धरकन्धा के गणेश पंडित से हुए मूर्तिपूजा सम्बन्धी

वादविवाद का वर्णन किया गया है । भवानी की मूर्ति को छिपाना, गाँव के मुखिया और मूर्ति पूजक हिन्दू मतावलम्बियों के क्रोधित होने किन्तु अन्त में दरिया साहब की विजय और सत्सङ्ग का प्रकट होकर अपने अनेक अवतारों को वर्णित करने का हृदय-स्पर्शी वर्णन किया गया है ।

निर्भय ज्ञान

"निर्भयज्ञान" के हस्तलेख का समय 1267 पसती है । इसका मूल उद्धरित रूप "विरमे ज्ञान" है ।

इस रचना के अंतर्गत दोहों की संख्या 8 और चौपाई 183, पदों की संख्या 191 तथा पंक्तियों की पूरी संख्या 382 है ।

निर्भय ज्ञान में कवि ने सत्सङ्ग के गुणों का रसास्वादन किया है । इसके अतिरिक्त सद्गुरु एवं शब्द में विश्वास, आत्मा पर उनका अतिपूर्ण एवं सुधारवादी प्रभाव, क्रोध वासना लोभ, आदि का परित्याग, यम के चौदह दुतों, ज्ञान द्वारा उनके दमन की आवश्यकता एवं मनुष्य के सम्भावित दोषों का विस्तृत रूप में वर्णन किया है ।

कवि का विचार है कि जिस प्रकार केत में पड़कर स्वाति बूंद कपूर बन जाती है अथवा जिस प्रकार गंध रहित दूध सुगंधित घी की प्रति होती है या बीजों में सुगंधित पुष्प निहित रहते हैं । इसकी प्रारंभ मानव शरीर सच्चा योग एवं सद्गुरु शब्द में मात्र गुणों का निवास रहता है ।

शब्द - बीजक

इस रचना में पदों की संख्या 1224 तथा पंक्तियों की संख्या 9224 है ।

संत दरिया साहब [बिहार बाबे] की रचनाओं में यह सबसे बड़ा ग्रंथ है । इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ग्रंथ में अंतर्गत बितने भी पदों का संकलन है वे सब भिन्न-भिन्न रागों में गाए जा सकते हैं । इस रचना में अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है । पदों की विभिन्न शीर्षकों में विभक्त की गई है और सब मिलाकर वे उन समस्त विषयों को समाहित कर लेते हैं जो इसके अतिरिक्त अन्य रचनाओं में प्रतिपादित किए गए हैं । कुछ नवीन विषयों का भी इस ग्रंथ में प्रतिपादन किया गया है । यह ग्रंथ ब्रह्म की व के समान है । यह साधुओं का अत्यधिक प्रिय ग्रंथ है । इस ग्रंथ के अंतर्गत 60 से अधिक छन्द व राग हैं । यह पद माया तथा ब्रह्म आदि विषयों पर आधारित है ।

इस रचना में एकता की भावना, परोपकार की भावना, जातिभेद का विरोध इत्यादि का वर्णन किया गया है ।

सहस्ररानी

इस रचना के हस्तलेख का समय 1870 वि० है । इसकी एक ही प्रति प्राप्त हुई है ।

इस रचना में दोहा या साधियों की संख्या 1053, पदों की पूरी

संख्या 1053 तथा पंक्तियों की पूरी संख्या 2106 है ।

अनेक विद्वान "सहस्ररानी" को सतसई अथवा "सतसई सस्ररानी" भी स्वीकार करते हैं । यह 1053 साधियों की एक सूची रचना है । ये साधियाँ दरिया साहब की अन्य पुस्तकों में वर्णित विभिन्न विषयों पर आधारित हैं । यही नहीं बहुत सी साधियाँ मौलिक रूप में भी दृष्टिगत होती हैं किन्तु अधिकांश दरिया साहब ने अपनी अन्य रचनाओं के पदों में न्यूनाधिक रूप में परिवर्तन करके सहस्ररानी में सम्मिलित किया है । सामान्य रूप से विद्वानों की यह धारणा है कि आरम्भ में सहस्ररानी में केवल सात ही पंक्तियाँ परंतु पणों की यह संख्या बढ़ते-बढ़ते एक हजार तक पहुँच गई और काव्यकृति का शीर्षक स्वतः ही सहस्ररानी पड़ गया ।

विवेक सागर

इस रचना के हस्तलेख का समय 1278-1279 फसली, 1893 ईव० है । इसकी तीन प्रतियाँ प्राप्त हैं । सामान्य रूप से इसकी उच्चरित रूप "विवेक सागर" है ।

इस रचना में पणों की संख्या 59, सोरठा 10, बाँपाई 556, छन्द 20, पणों की पूरी संख्या 645 एवं पंक्तियों की पूरी संख्या 1440 है ।

इस रचना में गण्ड की वंदना, विवेक के अभाव में बाह्याढम्बर की निरर्थकता, साधुत्व के लिए जातिपाँति की व्यथता, भक्ति के अभाव में मनुष्य का पशु पक्षी के रूप में स्पष्टीकरण, सद्गुरु में निरवास, स्वर्ग के आनन्द, दया के गुणों एवं मांसाहार

मनुष्यों के अवगुणों का वर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त पाण्डव का बहिष्कार, कौरव पाण्डवों के मध्य हुए युद्ध में विष्णु का हाथ होना, कृष्ण का दुर्योधन के समीप जाकर राज्य-विभाजन के सम्बन्ध में वार्तालाप, दुर्योधन द्वारा कृष्ण का उपहास, कौरव पाण्डवों का युद्ध, युधिष्ठिर का राज्याभिषेक, निर्गुण सत्पुरुष की सगुण कृष्ण से भिन्नता एवं दरिया तथा सत्पुरुष के मिलन इत्यादि का भी वर्णन किया गया है ।

यज्ञ समाधि

इस रचना के हस्तलेख का समय 1347 पक्षी है । इसकी केवल एक ही प्रति प्राप्त हुई है ।¹

इस रचना में दोहा या साड़ी 27, चौबार्ह 254, पदों की पूरी संख्या 281 और पंक्तियों की पूरी संख्या 562 है ।

मूल प्रति में इस रचना का उच्चरित रूप "यज्ञ समाधि" है । इस ग्रंथ में विवेक सागर के उत्तरार्द्ध के विषयों का ही पुनः सुचारु रूप से दूसरे छन्दों में वर्णन किया गया है ।

उपर्युक्त 20 रचनाएँ ही संत दरिया साहब [बिहार वाले] की मूल रचनाएँ स्वीकार की जाती हैं। अन्य किन्हीं भी प्रमाणित साधनों के आधार पर संत दरिया साहब [बिहार वाले] की अन्य रचना प्राप्त नहीं है । वैसे भी सम्स्त विद्वानों का इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है । वस्तुतः संत दरिया साहब की उपर्युक्त 20 काव्य कृतियाँ ही प्रमाणित एवं प्राप्य हैं ।

संत दरिया साहब [बिहार वाले] के जीवन-परिचय और रचनाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दरिया साहब के काव्य में परमसत्ता के प्रति गहन अनुराग एवं भक्ति की पावन भावना और उसकी सरल अभिव्यक्ति मिलती है ।

संत दरिया साहब ने परमात्मा के प्रेम में डूबकर विश्व के कण-कण में जिस दिव्यानन्द की अनुभूति प्राप्त की उसे भक्ति एवं प्रेम की सरिता के रूप में प्रवाहित किया है ।

जहाँ तक दरिया साहब की रचनाओं का प्रश्न है । उनमें अनेकानेक चित्र ऐसे मिलते हैं जो समाज के ध्वज में बड़े ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं । इनकी रचनाओं में अधिकतर लठयोग की साधनाओं के पारिभाषिक प्रतीक मिलते हैं । इनमें उन्होंने समाज में रहनेवाले मनुष्यों को उपदेश दिए हैं । साथ ही परमात्मा, जीवात्मा, माया, संसार, मन, शरीर आदि के लिए कितने ही प्रतीकों का प्रयोग किया है ।

संतों के ब्रह्म-संबंधी प्रतीकों पर विचार करते हुए डॉ० अहसन का विचार है "संतसाहित्य में ब्रह्म या परमतत्त्व का वर्णन पाँच रूपों में मिलता है :

1. ब्रह्म के निर्गुण रूप में, 2. सगुणात्मक रूप में, 3. योग शब्दों के रूप में, 4. मायुर्य भाव के रूप में, 5. व्यक्तसाय ।"

संत दरिया साहब ने निरंजन, राम, हरि, गोविन्द, साई, भरतार,

।।। डॉ० मुहम्मद अहसन, संत साहित्य में प्रतीक विधान, पृ० 60

बाजीगर आदि प्रतीकों का वर्णन किया है ।

संतों ने आत्मा-परमात्मा को एक ही माना है । आत्मा परमात्म का आंशिक रूप है । "जीवात्मा पूर्णतः परमात्मा पर ही निर्भर है । इससे पुष्कल जीवात्मा का कोई अलग अस्तित्व नहीं ।"।

संत दरिया पूर्ण संत थे । जहाँ उन्होंने संतों की अन्य प्रचलित परम्पराओं का अनुसरण किया वहाँ उन्होंने प्रतीकात्मक लब्धावली को भी स्वीकार किया है । उन्होंने जीवात्मा सम्बन्धी प्रतीकों, मछली, चा तक, हंस एवं सिंह आदि का प्रयोग किया है ।

मान में धेतना जागृत होने से आष तक माया के प्रति निन्दनीय दुष्प्रकोप शक्ति को ही स्वीकार किया है । संतों ने तो इसकी पूर्ण निन्दा की और इसे साधना में बाधक बताया है । माया के सम्बन्ध में संतों ने विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया है । कहीं माया को जादू, हन्त्रपाल, अलौकिक शक्ति, अद्भुत कौशल, तो कहीं छतकपट, भ्रम, त्रिगुणामयी, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, अस्थिर आदि सम्बोधनों से स्मरण किया है । दरिया साहब ने संतों द्वारा प्रयुक्त अधिकाधिक माया सम्बन्धी प्रतीकों का प्रयोग किया है । इस प्रकार आलोच्य संत दरिया साहब अलौकिक प्रतिभा की प्रतिमूर्ति थे ।

हमारे शोध का विषय "दरिया साग में चित्रित समाज" जिन

परिस्थितियों में आलोच्य संत दरिया साहब ने अपने पंथ का निर्माण किया एवं काठ्य-
 रचना की तथा राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के परिक्षेद में
 अनुभूति ग्रहण की, उन परिस्थितियों का विशेष महत्व रहा है। यह सब उस समय की
 परिस्थितियों पर निर्भर करता है। किसी भी रचना पर समाज की परिस्थितियों का
 प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। जहाँ तो संत कवि दरिया साहब का प्रान है,
 उनका सामाजिक दृष्टिकोण उनके आत्मज्ञान पर आधारित है। जो अनेक वर्गों में बँटा
 हुआ है। तत्कालीन समाज ऊँची की भेदभावना से परिपूर्ण था। यह भेदभाव एक
 तो कुल और जाति विषयक ऊँची की मान्यता, प्रथा तथा दूसरे आर्थिक सम्पन्नता
 पर आधारित था। जब समाज में ऐसा दृष्टिकोण घर कर जाता है तो उसके व्यक्तियों
 के सुधार या परिवर्तन की आवश्यकता नहीं रहता। ऐसी मान्यताएँ उन्हें यह मानने
 को विवश कर देती हैं कि व्यक्ति की अस्तित्व का आधार उसका निजी आधार नहीं
 अपितु धन-सम्पन्नता अथवा उच्च कुल या उच्च जाति में जन्म लेना है। दूसरी ओर
 समाज में विद्वेप भावना के विकास में भी साधक होता है। इन्हीं के परिक्षेद में
 "दरिया सागर में चित्रित समाज" का अध्ययन करना आवश्यक है।

: चतुर्थ अध्याय :

दरिया सागर में चित्रित समाज

1. "समाज" शब्द

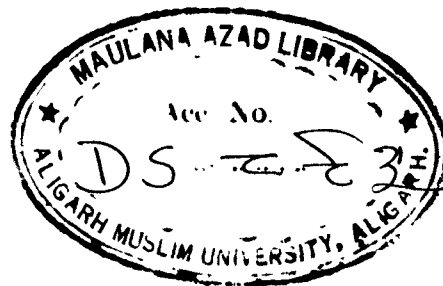
2. संतों का सामाजिक दृष्टिकोण ।

3. दरिया साहब के समय का समाज ।

[अ] उच्चवर्गीय समाज ।

[आ] मध्यवर्गीय समाज ।

[इ] निम्नवर्गीय समाज ।



दरिणा सागर : चित्रित समाज

"समाज" शब्द

समाज एक ऐसा बहुवर्धित शब्द है जिसके चारों ओर अनेक विद्वानों एवं दार्शनिकों के विचार घूमते रहते हैं । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि समाज यही केन्द्र बिन्दु के चारों ओर वैज्ञानिकों, दार्शनिकों एवं विद्वानों के मत परिधि के रूप में प्रसृत बनाए हुए है । जब से मानव जाति ने एकाकी को त्यागकर सामूहिक रूप में जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया तभी से समाज का निर्माण भी हो गया । यदि यह कहा जाए कि मानव जाति में सम्पत्ता के गुणों का आकर्षण होते ही समाज ने जन्म ले लिया तो कोई अत्युक्ति न होगी । जब मानवजाति ने एकाकी जीवन को त्यागकर सामूहिक रूप में रहना आरम्भ किया तो उसमें सम्पत्ता के बीच ने वस्तुत्व का रूप धारण करना आरम्भ कर दिया, जो मानव की मस्तिष्क यही धरती में अंकुरित हो चुका था ।

समाज क्या है समाज किसे कहते हैं इसका स्वयं क्या है - इस की व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है, आदि अनेक प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं । जिनका उत्तर देना अतिआवश्यक है । इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय और पश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का जानना आवश्यक है । नीचे समाज से सम्बद्ध कुछ प्रमुख परिभाषाओं पर विचार किया गया है ।

।अ। पारधात्य मत

पारधात्य विद्वान गिडिंग्स के अनुसार "समाज स्वयं वह संघ है, वह संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का वह योग है जिसमें कि सहयोग देने वाले व्यक्ति आपस में बंधे रहते हैं ।" ¹

प्रो० मैकाइवर के अनुसार " समाज रीति और व्यवहारों का प्रभुत्व एवं पारस्परिक सहायता का, एकाधिक समुदायों तथा विभागों का और मानव आचार एवं स्वतंत्रता के नियंत्रण का क्रम है । इस सतत परिवर्तनशील षटिल क्रम को समाज कहते हैं । यह सामाजिक सम्बन्धों का षटिल षाल है और सदा परिवर्तित होता रहता है ।" ²

पार्क और वर्ग्स ने समाज की परिभाषा करते हुए कहा है - "समाज अनेक आदतों, अनेक भावनाओं, जनरीतियों, लोकवाचारों, प्रतिनिधि भावनाओं और संस्कृति की एक सामाजिक विरासत है जो मानव के सामूहिक व्यवहार का निर्धारण करती है ।" ³

।आ। भारतीय मत

डॉ० सम्पूर्णानन्द के अनुसार -" सम्बन्धित जनः अस्मिन् रति"-

जिसमें लोग एक साथ, एक गति से, एक से चलें, वही समाज है । एक साथ या एक से चलने का फौज सिपाहियों की भांति किसी एक दिशा में कदम मिलाकर चलना नहीं

।1। गिडिंग्स : प्रिन्सिपल्स ऑफ सोसोलॉजी, पृ० 27

।2। मैकाइवर : सोसाइटी, लन्दन, 1950

।3। पार्क वर्ग्स : इन्ट्रोडक्शन टू द साइंस ऑफ सोसोलॉजी, पृ० 163

है । तात्पर्य यह है कि लोगों की जो समाज के अंग हों - परिस्थिति एक सी हों, उनके प्रयत्न और उद्देश्य एक से हों ।¹

डॉ० जयपाल शर्मा के अनुसार - " समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है वरन् यह सामाजिक भावात्मक व्यवस्था है । "²

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि समाज ऐसे समूह का नाम नहीं जो समान रंग, रूप, धर्म, जाति, वैकुण्ठा, उन्नयन एवं रहन-सहन के आधार पर एक जैसा प्रतीत हो अपितु समाज एक ऐसे समूह का नाम है जो परस्पर भावनाओं पर आधारित हो । ऐसी भावनाएँ जो मनुष्य के बाह्य स्वभाव में समानता उत्पन्न न करके आन्तरिक स्वभाव को प्रभावित करती हों । इसी कारण समाज शास्त्रीय विज्ञान समाज को मूर्त न कहकर अमूर्त कहते हैं ।

12। संतों का सामाजिक दृष्टिकोण

संतों की वाणियों की अभिव्यक्ति तत्कालीन भाषा के माध्यम से हुई है । डॉ० शिवकुमार शाण्डिल्य के अनुसार " भाषा का जन्म एक व्यक्ति से होता अवश्य है किन्तु यही व्यक्ति जब अपने आपको पूरे समाज में व्याप्त कर देता है तब उसका सम्भाव्य भाषा का रूप होता है । व्याप्ति की दृष्टि से भाषा ब्रह्म की "एकोअहं बहु समामा" की स्थिति है । "³ संत कभी अकेले नहीं रहे । वे पूरे समाज के प्रतिनिधि थे । सम्पूर्ण समाज उनमें व्याप्त था।

1। सम्पूर्णानन्द : समाजवाद, पृ० 19 । भारती ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1960।

2। डॉ० जयपाल शर्मा : प्रप्रेय के काठ में विव्रित समाज, पृ० 69

3। डॉ० शिवकुमार शाण्डिल्य : हिन्दी भाषा और सम्प्रेषण प्रक्रिया, पृ० 3

15वीं शताब्दी का समय सामाजिक दृष्टि से उथल-पुथल का समय था । समाज में ऊँचीय, मुसलमानों में श्रेय की भावना, छुआछूत एवं साम्प्रदायिकता धरम सीमा पर थी । एक ओर हिन्दू समाज में पंडित निम्न वर्ग वालों का बराबर में ऊँचा होना बुरा समझते थे । राज्य की समस्त बागडोर पंडितों के हाथ में होती थी । दूसरी ओर इस्लाम के अनुयायी समाज में अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहे थे । वे अपने सुव्यवस्थित विचारों से हिन्दू धर्मावलम्बियों को प्रभावित कर इस्लाम धर्म में सम्मिलित कर रहे थे । हिन्दू-मुस्लिम के अतिरिक्त एक अन्य वर्ग समाज में उभर चुका था , यह वर्ग था संतों का । यह वर्ग दो धर्मों के पाखंडों एवं जटिल नियमों का विरोध कर रहा था ।

इन संतों का दृष्टिकोण हिन्दू-मुस्लिम एकता, छुआछूत, ऊँचीय, जातिभेद का विरोध कर समाज में एकता तथा विश्व बंधुत्व की धारणा उत्पन्न करने का प्रयत्न करना था ।

संत निम्रोह के अवतार थे । उनका दृष्टिकोण था कि जब तक समाज में बाह्याङ्ग्य बर समाप्त नहीं होगा, तब तक हिन्दू-मुस्लिम की अनेकता की समस्या का समाधान नहीं हो सकता । संत कबीर हिन्दू मुसलमान दोनों को फटकारते हुए कहते हैं - हिन्दू मुसलमान कोई नहीं है । सबका एक ही राम है, उसको ही जानना चाहिए - " कहे कबीर एक राम जयहु रे ।

हिन्दू मुसलमान कोई ॥"।

संत दादू दयाल हिन्दू मुसलमान की एकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हिन्दू मुसलमान इस प्रकार दोनों भार्ड हैं जिस प्रकार एक मनुष्य के दो हाथ, दो कान, दो नैन होते हैं :

“ दोनों भार्ड हाथ पग, दोनों भार्ड कान ।

दोनों भार्ड नैन हैं , हिन्दू मुसलमान ॥”¹

संत नानक ने संतों की समन्वय की इसी भावना को सशक्त बनाने हेतु अपनी काव्य रचनाओं में संतों द्वारा प्रचलित समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाया है । उन्होंने हिन्दू मुसलमानों के आपसी भेदभाव की भावना का निवारण करते हुए अपने विचार स्पष्ट किए हैं :

“ न हम हिन्दू न मुसलमान ,

दोनों बीध बसे रैतान ।

एकै एकी एक सुभान ,

गुं जी कहिया सुन अब्दुर्रहमान ,

दावा भुलों तो इक्क पिछान ॥”²

संत चरनदास ने भी अन्य संतों के समान सामाजिक विभक्तियों का उद्घन किया है । वह स्वयं समन्वयात्मक दृष्टिकोण का अनुसरण करते हैं । उन्होंने सामाजिक विभक्तियों को दूर कर समानता लाने का सशक्त एवं सफल प्रयास किया

॥१॥ दादू दयाल की बानी, भाग - १ , पृ० 222

॥२॥ नानक बानी, पृ० 105

है । उनका विचार है :

" एक न पग पनहीं नहीं एक थै सुख पात ।

यहीं जो मोहि बसाइये , एक मुक्ति को चाहिं ॥

× × × × ×

× × × × ×

एकन की मेवा मिले , एक धन भी नाहिं ।

कारन कौन दिखाइये , करि चरन की छाँहि ॥"¹

एकनिष्ठ भगवान के माध्यम से संत दरिया साहब [मारबाड़ वाले]

मानवतावाद का पथ प्रदर्शन करते हैं । उन्होंने स्वयं ऐश्वर्यवाद का अनुसरण कर अपने विचारों को सफ़लतापूर्वक स्पष्ट किया है । संत दरिया साहब एकनिष्ठ परमात्मा का वर्णन करते हुए कहते हैं :

" आने अपने इष्ट में , राख रहा सब कोय ।

दरिया रक्ता राम हूँ , साथ सिरोमन सोय ॥

दरि १ धन १ साधना रहे राम लीलाय ।

राम नाम बिन जीव से काल निरन्तर जाय ॥"²

संतों की इसी प्रवृत्ति का अनुसरण संत गुलाब साहब ने किया ।

उन्होंने स्वयं ऐश्वर्यवाद के माध्यम से सामाजिक समन्वय को सफल रूप में स्पष्ट किया ।

संत गुलाब साहब ईश्वर की स्वता में विश्वास रखते हुए कहते हैं कि ईश्वर जल-धरा

[1] दरनदास की बानी , पृ० 415-16

[2] दरिया साहब [मारबाड़ वाले], की बानी , पृ० 6

सभी में विमान है । उदाहरणार्थ :

" तुम उस ठाकुर परगट देखत करत सवै प्रतिपत्त ।

मे धरनि पत-पत में साहब का जानै वह हात ॥

सुभति सरोहिं आवत नाहीं डारत गर में मात ।

हिन्दू सुरक मरत में जागौ सुदि गिसरि गह हास ॥"¹

संत दरिया साहब [बिहार वाले] का विचार है कि हिन्दू - मुसलमान दोनों भटक रहे हैं । आपसी वाद-विवाद दोनों को पतन की ओर ले जा रहा है । वस्तुतः यही यथावै दृष्टिकोण था जो सनैः सनैः संतों की वाणी में मुखरित होता रहा । दरिया साहब के शब्दों में :

" हिन्दू सुरक दूनो भुताना ।

दूनो वादि - विवादि निसाना ॥"²

संतों के समय का समाज धार्मिक अंधविश्वासों एवं जातिगत बंधनों का समाज था । उस समाज अछूत वर्ग की दशा अत्यंत दयनीय एवं शोचनीय थी । संतों का विचार था कि जब कि समस्त मानव जाति एक ही ईश्वर की संतान हैं तो ऊँची-नीची की भावना का प्रश्न उर्वर की बात है । एक ही परिवार के सदस्यों में किसी को निम्न समझना किसी भी दृष्टि से उपयुक्त नहीं । प्रत्येक मानव में एक ही रक्त-धारा प्रवाहित है तो भेदभाव एवं ऊँची-नीची का प्रश्न उत्पन्न होना हमारी अयोग्यता

[1] गुलाब साहब की कानी, पृ० 46

[2] दरिया साहब [बिहार वाले], दरिया सागर, पृ० 8।

एँ कुमुदि का परिचायक है ।

संतों ने जातिर्माँति, छुआछुत को दूर करने के लिए सक्त प्रयत्न किए हैं उन्होंने ऊँवनीध का डकार विरोध किया । संत कबीर दास जी कहते हैं -
यदि व्यक्ति के कर्म उच्च नहीं तो उच्च जन्म में जन्म लेने का क्या गौरव । स्वर्ण कलश भी यदि मदिरा से परिपूर्ण है तो साधुजन तो उसकी निन्दा ही करेंगे -

" ऊँव कुत क्या जनमियाँ जे करणी ऊँवनीध ।

सोवन कलस हुरे भर्ग साधु निंगा सोइ ॥"¹

संत पलटूदास परस्पर प्रेम के बंधनों को अत्यंत सशक्त बनाने का सक्त प्रयत्न करते हैं । वे बाह्याटम्बरों, जेऊ एँ भस्म इत्यादि से परे पारस्परिक प्रेम के बंधनों की जटिलताओं पर अत्यधिक ध्यान देते हैं । वे प्रेम के उन्माद के अनन्तर कर्म और जेऊ को तोड़ फेंकते हैं :

" करम जेऊ तोड़ि के भस्म किया छपकार ।

बेहि गोबिन्द-गोबिन्द मिले धुक दिया संसार ॥"²

जातिर्माँति का विरोध करना मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करना प्रत्येक संत ने अपना धर्म माना है । संत दादू दयाल भी जातिर्माँति के संबंध में वही दृष्टिकोण रखते हैं जो संतों का सामान्य दृष्टिकोण है । वह जातिर्माँति का

[1] कबीर गी, दोहा, 469

[2] संत बाने संग्रह, भाग - 1, पृ० 215

विरोध करते हुए कहते हैं :

" जै पहँये ते कहि गये - तिनकी ए कै बात ।

सबै सयाने एक मति तिनकी एकै जाति ॥"¹

संत गुजाल साहब जातिपाँति का विरोध करते हुए कहते हैं :

" तुम जाति न जान गँवार हो ।

को तुम आहु कहाँ ते आओ , दूटी करत पसारा हो ॥"²

संत मनुक्दास धार्मिक पिशवाओं, जटिलताओं एवं बाह्याढम्बरों
आदि का विरोध करते हुए कहते हैं :

" माता कहाँ ओ कहाँ तसबीह ।

अब बेत हनीहिं कर टैक न भैं ॥

× × × ×

दास मसूक कहा भरमो तुम ।

राम रहीम कहावत एकै ॥"³

संत दरिया साहब पाखंडी ब्राह्मणों और वैष्णवों पर ध्यान करते
हुए कहते हैं, " स्वयं तो ब्राह्मण बना हुआ है और पर में साक्त मेहरि रहे हुए है जो
भँकर माँसाहारिणी है :

" अपने ब्रह्मन विस्नो होई ।

पर में साक्त मेहरि सोई ॥"⁴

॥१॥ दादू दयाल की बानी, पृ० १३९

॥२॥ संत गुजाल साहब की बानी, पृ० ३

॥३॥ संत मनुक्दास की बानी, पृ० २७

॥४॥ संत दरिया साहब, दरिया सागर, पृ० ८३

संतों के विचार ' न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान ।

अपितु दोनों धर्मों में जो गुण विद्यमान हैं उन्हीं को संतों ने स्वीकार किया है । अतः हम यह कह सकते हैं कि संतों ने न केवल पारस्परिक जातिगत भेदभाव को ही दूर किया वरन् दोनों के धार्मिक एवं जातीय भेदभाव को दूरकर सामाजिक एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया है । उनकी दृष्टि में धर्म एवं धर्मावलम्बी कुछ नहीं थे , केवल मानवता थी ।

संतों ने मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाकर भारतभूमि में ऐसा प्रेम का बीज बो दिया जिसने भविष्य में ऐसे समन्वयात्मक युग का आकार धारण किया जिसकी छत्रछाया में रहकर भारतवासियों में जातिभेद का भेदभाव समाप्त हो गया और समन्वय की तीव्र अनुभूति उत्पन्न हो गयी । संतों की इसी तीव्र समन्वयात्मक भावना के दर्शन भविष्य में हमें उस समय दृष्टिगोचर हुए जब भारतवासियों ने हिन्दू मुस्लिम आदि के भेदभाव को भुलाकर विदेशी औद्योगिकों को भारत भूमि से निकाल बाहर किया । यही समन्वयात्मक भावना एवं ऐक्य की भावना के साथ भारतीय विदेशी औद्योगिकों से न चकराते तो उन्हें भारतभूमि से निष्कारित करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव हो जाता ।

॥३॥ संत दरिया साहब के समय का समाज

जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से संत दरिया साहब के समय के समाज का अध्ययन करते हैं तो उस युग के समाज की वह स्थिति उभरकर सामने आती है जो मुगल

मुगल शासकों के ऐश्वर्यमयी जीवन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी । शासक और शासित में आकाश पाताल का नहीं तो धरती पाताल का भेद भी अवरुद्ध उत्पन्न हो गया । मुगल शासन समाज में फैली अराजकता शासक और शासित के मध्य उत्पन्न अप्रत्यक्ष अथवा साबात दुर्भेदा के फलस्वरूप गहरी खाई उत्पन्न कर चुका था । इस कारण मुगल शासन एक ऐसे अविश्वास योग्य ज्वालामुखी पर जैसा उड़ा हुआ जिसके फटने पर सर्वनाश होना भी दिन के पश्चात् रात आने के समान सत्य था । समाज की इस स्थिति एवं भेदभाव को विद्वानों ने स्पष्ट करने हेतु तीन वर्ग अर्थात् उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग में विभाजित किया है ।

उच्च वर्गीय समाज के अंतर्गत सम्राट और उसके अधीन मन्त्रिबदार तथा जमीर थे ।

मध्यमवर्गीय समाज के अंतर्गत कर्मचारी, व्यापारी, दुकानदार आदि थे ।

निम्नवर्गीय समाज के अंतर्गत नौकर, पेसा, मजदूर तथा कुलक आदि थे ।

इस युग में समस्त अधिकार राजा को प्राप्त थे । शासक ही सर्वसर्वा होता था। सम्पूर्ण शक्तियाँ अथवा प्रभुसत्ता शासक को प्राप्त थी । अतः उसकी इच्छा के बिना सोचना भी सम्भव न था । सम्पूर्ण देश में उच्च पदस्थ तथा जमीरों का शासन था । राज्य की समस्त शक्ति शासक द्वारा इसी वर्ग को प्राप्त थी ।

इस युग में छुआछूत, जैवनीय का भेदभाव चरमसीमा पर पहुँच गया था । "हिन्दू समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्गों में विभाजित था ।" ¹ ब्राह्मणों का हिन्दू समाज में सर्वोपरि स्थान था। वर्ण-व्यवस्था के आधार पर दूसरा स्थान क्षत्रियों का था तथा वैश्यों का स्थान क्षत्रियों के बाद था । शूद्र अन्य तीन वर्गों के सेवक माने जाते थे ।

ब्राह्मणों का अन्य वर्गों पर प्रभुत्व था। "राजाओं तथा जागीरदारों की ओर से ब्राह्मणों को जागीरें भी प्राप्त थीं ।" ²

हिन्दू समाज में जातिगत भेदभाव अधिक बढ़ा हुआ था । शूद्र अस्पृश्य समझे जाते थे । हिन्दू समाज में उनका कोई स्थान न था । मुस्लिमों में भी शिया सुन्नी का ईरानी, तुर्कानी का भेदभाव अत्यन्त भयंकर भेदभाव था ।

रहन-सहन सम्बन्धी विभिन्न प्रकरणों को देखने से पता चलता है कि जहाँ उच्च वर्गीय सोने चाँदी के सुंदर बर्तनों में मूल्यवान पकवानों का भोजन करता था वहीं निम्नवर्ग मिट्टी के बर्तनों में साधारण रोट्टी से पेट भरता था । "हिन्दू सामन्तों की बड़ी दावतों एवं विज्ञात भोजनों में पाकशास्त्र की उन्नति कला के अनुसार बनाए गए पकवान एवं सुस्वाद व्यंजनों की अधिकता रहती थी । ईरानी एवं पारसी पाककला की विधियाँ सम्पूर्ण हिन्दू एवं मुस्लिम वर्ग में समाप्त रूप से लोकप्रिय हो गयी थीं ।" ³

111 डॉ० राजकिशोर पाण्डेय : हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्ययुग, पृ० 3।

121 ——— वही ———

पृ० 3।

131 सू० सू० च०, पृ० 175 से 177

हिन्दुओं के मध्यम वर्ग के परिवार में दाल, चावल, रोटी, तरकारी, पापड़, मटरा आदि सादे पौष्टिक पदार्थों से भोजन किया जाता था।

“ दाल गली है भसी पिं पिं सौं बहु वाउर है गो सुगन्ध भरो धू ।

“ देखि बराबरि रीझि रहोगे सु पापरि पूरी करी न उसे धू ॥

है तारकारी स्वाद भरी बनि गोरस सेवक भूक हरो धू ॥”¹

निम्न वर्ग में कोदों, सर्वाँ जैसे अति साधारण अन्न का प्रयोग होता था :

“ कोदों सर्वाँ अन्न नहीं ।

कुलाहा धुतिया जन नहीं ॥”²

उस समय उच्च वर्ग में मदिरापान निन्दनीय नहीं समझा जाता था। लेकिन सन् 1653 ई० में औरंगजेब के शासनकाल में मदिरापान पर प्रतिबंध लगा दिया गया था ।

इस युग के समाज में वस्त्रों तथा आभूषणों का प्रचलन अधिक था । सभी वर्गों के व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार वस्त्र तथा आभूषण पहना करते थे । धनी वर्ग की स्त्रियाँ मूल्यवान वस्त्र तथा आभूषण धारण करती थीं । इसके अतिरिक्त निम्नवर्ग की स्त्रियाँ सस्ते वस्त्र तथा आभूषण धारण करती थीं । गोपाल चन्द्र मिश्र ने मुसल्लर, मउमस, मुकेशी आदि वस्त्रों का उल्लेख किया है जोकि उच्चवर्ग में लोकप्रिय थे ।³

111 सु० ति० प्र० सं० 328

121 धा० भा० , पृ० 70

131 गोपाल मिश्र, का० की० पृ० 364

“मुगलकाल में पाघरा स्त्रियों का अधोवस्त्र था जो कमर में पहना जाता था और नीचे की ओर घेरदार और बुन्ट से युक्त होता था ।”¹ उस समय साड़ी कंबुकी का रिवाज भी था ।

पुरुषों के कपड़ों में कोई अन्तर नहीं है । उच्च वर्ग के पुरुषों की आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण हीरे जवाहरात से जगमगाते वस्त्र धारण किया करते थे । मध्यम वर्ग भी उच्च वर्ग के समान ही वस्त्र धारण किया करता था किन्तु मूल्य में अन्तर अवश्य होता था । वहीं निम्न वर्ग के पुरुष छीवर, छेस, तथा चौसई जैसे मोटे कपड़े धारण किया करते थे ।

उस समय उच्चवर्ग की भवन-सज्जा और निम्नवर्ग की भवन-सज्जा में जमीन-आसमान का अंतर था । उच्चवर्ग के भवनों में सुंदर अटारियाँ, चौबारा, बैठक, बाग-बगीचे, छेत के ठौर इत्यादि होते थे । ऐसा कि मुगलों के किले ताजमहल इत्यादि उदाहरण के लिए हमारे सम्मुख हैं । निम्नवर्ग की मिट्टी की झोपड़ियाँ होती थीं । बर्नियर ने भी मिट्टी की छोटी झोपड़ियों का भी उल्लेख किया है ।²

उस समय राजदरबारों का ऐश्वर्य असाधारण था । बादशाह और बेगमों रत्नों से जड़े हुए वस्त्र धारण किया करते थे जिस कारण वस्त्रों पर अधिक धन व्यय होता था । सम्पूर्ण मुगल परिवार में रत्नों और मणियों का मुक्त प्रयोग होता था ।³ इनके साथ-साथ छोटे-छोटे नबाबों और राजाओं की भी यही दशा थी ।

111 अल्वेकर : पोजीशन आफ वीमन इन हिन्दू सिविलीजेशन, पृ० 356

121 बर्नियर ट्रेवल्स, पृ० 252

131 डॉ० मोन्द्र : ऐतिहासिक की भूमिका, पृ० 10

नबावों और राजाओं के जीवन भी इनसे भिन्न नहीं थे । जबकि निम्नवर्ग को तन टूटने के लिए भी वस्त्र नहीं थे ।

मुगल बादशाहों से कहीं अधिक छोटे जागीरदार विलासी बने हुए थे क्योंकि मुगल बादशाह युद्धों और विद्रोह, सीमान्त उपद्रवों को सुलझाने में लगे हुए थे, लेकिन अधीनस्थ राजा और सामन्त इससे भी मुक्त थे । इनका सारा समय भोग-विलास में ही व्यतीत होता था । उस समय राजमहलों में अनगिनत स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न वर्गों और जातियों की रहा करती थीं । औरंगजेब ने इस पर प्रतिबंध लगाए और मदिरा तथा अन्य मत्सीली वस्तुओं के सेवन पर प्रतिबंध लगाया । अमीर तथा सामन्त मदिरा में इतना डूब चुके थे कि उन्हें निकातना असम्भव था । "औरंगजेब के बाद तो यह क्रम इतना बढ़ा कि मुहम्मद शाह अपनी रसिकता के कारण रंगीले कहे जाते थे।"¹

"सम्राट जहाँदार के संबंध में यहाँ तक कहा गया है कि वे हाथ में दर्पण और कंधा लिए हुए, हर समय सुंदर स्त्री के समान अपने केशों को सँवारा करते थे।"²

उस समय उच्च वर्गीय समाज में नारी की स्थिति दयनीय थी । वह एक आश्रित प्राणी मात्र थी । उसका समाज में कोई स्थान नहीं था । उसे केवल भोग-विलास की वस्तु समझा जाता था । नार की कोई जाति नहीं देखी जाती थी । सबसे कड़ी जाति उसकी सुंदरता ही थी ।

[1] कृष्ण चन्द वर्मा : रीतिपुगीन वाक्य , पृ० 24

[2] — वही —

उस युग में निम्नवर्ग की दशा अत्यंत शोचनीय एवं दयनीय थी ।

उच्चवर्ग से लेकर मध्यम वर्ग तथा उनके कारिन्दे, गांव के मुखिया आदि इनका शोषण कर रहे थे । मजदूर को दिन भर मेहनत करने के बाद ही दिन में एक बार भोजन प्राप्त होता था ।

इसी प्रकार सहजोबाई के निम्नांकित दोहे से निम्नवर्ग की दशा का सही परिचय मिलता है ।

“ द्रव्यहीन भक्त फिर , ज्यों सराय के स्वाम ।

छिड़कि दियो जेहि घर गया , सहजो रह्यो न मान ॥”¹

निम्नवर्ग वाले यदि किसी कारण कोई गलती कर देते या लगान देने में देर होती तो कोढ़ों की मार सहनी पड़ती । उस समय निम्न वर्ग तरह-तरह से सताया जा रहा था । उसका समाज में कोई स्थान नहीं था । यदि यह कहा जाए कि उस समय निम्नवर्ग की दशा पशु के समान थी तो अनुचित न होगा । किसानों की दशा सबसे अधिक दयनीय थी । डॉ० मोन्द्र किसानों की दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं “मुगल बादशाहों के असंख्य पुतों, बहुमूल्य इमारतों उनके और उनके अमीरों के विलास वैभव सभी का भार अंत में जाकर इन किसानों पर पड़ता था । सचमुच इस समाज के प्रासाद इन्हीं लोगों की हड्डियों पर छड़े हुए थे । इन्हीं के आँसू और रक्त की छूँटें जमकर अमीरों के मोती और तातों का रूप धारण कर लेती थीं ॥”²

जागीददारों का सबसे अधिक शोषण किसानों पर था । यदि

किसी कारण फसत अच्छी नहीं होती तब भी किसान को कर माफ नहीं था । लगान निर्दयतापूर्वक वसूला जाता था । राज कर्मचारी राजकोष के साथ-साथ अपने भी कोष भरते थे । बादशाह से लेकर कारिन्दे तक की टैक किसान थी । उस समय भ्रष्टाचार और अत्याचार अपनी घरमसीमा पर था । देश का सामाजिक स्तर दिनोदिन गिरता जा रहा था ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि समाज में यदि जीवन व्यतीत करने का पूर्ण आनन्द उच्चवर्ग अथवा शासकवर्ग को प्राप्त था तो मध्यम वर्ग भी इस आनन्द से वंचित न था । उच्चवर्ग और मध्यमवर्ग जितना आनन्दपूर्वक एवं स्तरीय जीवन व्यतीत कर रहा था निम्नवर्ग उससे कहीं अधिक पातनापूर्ण एवं निम्नस्तरीय जीवन व्यतीत कर रहा था । एक ओर यदि उच्चवर्ग एवं मध्यमवर्ग आभूषण एवं मूल्यवान् वस्त्रों को धारण करता था तो दूसरी ओर निम्न वर्ग के पास शरीर ढंकने अथवा ढँक एवं वर्ण से शरीर को बचाने के लिए साधारण वस्त्र भी उपलब्ध न थे । एक ओर उच्च एवं मध्यवर्ग यदि मूल्यवान् पात्रों में स्वादिष्ट भोजन खाता था तो दूसरी ओर निम्नवर्ग को साधारण पात्र एवं भोजन एक समय भाग्यवश ही प्राप्त होता था । वस्तुतः समाज में एकता एवं मानवता का पूर्ण नहीं तो आंशिक रूप में अवश्य अभाव था । आजोच्य संत दरिद्र साहब ने इस ऊँची, छोटे-बड़े की वैमनस्यपूर्ण खाई को पारने का कार्य किया ।

: पंचम अध्याय :

दरिया सागर में दरिया साहब का सामाजिक दृष्टिकोण

1. मानवतावादी दृष्टिकोण और समाज ।
2. बाइपाडम्बरों और हुआहुत सम्बन्धी दृष्टिकोण ।
3. दरिया सागर में परम सत्ता एवं ईश्वर का स्वरूप ।
4. दरिया सागर में वर्णित धार्मिक विचार ।
5. दरिया सागर में जीवन व्यवहार मूलक सामाजिक प्रतीक ।

दरिया सागर में दरिया साहब का सामाजिक दृष्टिकोण

दरिया सागर ,दरिया साहब की ऐसी रचना है जिसमें दरिया साहब के विभिन्न दृष्टिकोण पाठक के सामने स्वतः बलवत् लगते हैं । दरिया साहब के समय का समाज आंग्लिक ण्य में अराजकता से पूर्ण एवं उत्थ-पुथ का समाज तो था ही,साथ ही साथ उसमें सामाजिक भेदभाव एवं असमानतावादी दृष्टिकोण भी घर कर गए थे । संतों ने इस अराजकतावादी एवं असमानता से परिपूर्ण स्थिति को साम्य - दृष्टि से देखने का सफल प्रयास किया । इनके समाज सम्बन्धी दृष्टिकोण उनकी बानियों में मुखरित हुए हैं ।

संत दरिया साहब की लगभग बीस रचनाएँ हैं । इन्हीं के माध्यम से समाज में उपजी विभिन्न दूषित विचारधाराओं का दरिया साहब ने डटकर मुकाबला किया । उन्होंने दरिया सागर जैसी प्रतिभाशाली रचना से समाज के दूषित वायुमंडल को स्वच्छ करने का सफल प्रयास किया तथा समाज में फैले बाह्याढम्बरों को दूर करने का प्रयास किया । मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर समाज में समन्वय की चेतना जागृत की । इन समस्त कुरीतियों एवं रिवाजों का विरोध करते हुए संतों ने अपने आधारभूत दृष्टिकोण अर्थात् इस्लामिक दृष्टिकोण का भी आधार लिया । वे उसके प्रदर्शन एवं आख्यान में भी पीछे न रहे । उन्होंने परमसत्ता के एकेश्वरवादी दृष्टिकोण को अपनाया और इस प्रकार अपने धार्मिक दृष्टिकोण को पूर्ण ण्य से प्रदर्शित करने में सफल रहे ।

दरिया सागर में प्रयुक्त दरिया साहब का सामाजिक दृष्टिकोण उनकी रचना में पूर्ण रूप से उभरकर सामने आता है । आगे इस विषय में सोदाहरण विवेचन किया गया है ।

॥॥ मानवतावादी दृष्टिकोण और समाज

मानवता, मनुष्य में इसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार शरीर में आत्मा । मानवता कोई ऐसा आधुनिक प्रश्न नहीं जिसके बारे में प्राचीनकाल से लोगों ने विचार न किया हो । मानवता किसी धर्म विशेष की वस्तु नहीं अपितु कर्तव्य - परायणता, सहानुभूति, विश्वास एवं प्रेम आदि गुणों का नाम ही मानवता है ।

मानवता के सम्बन्ध में वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण, गीता, श्रीमद् भागवत, महाभारत, बौद्ध एवं जैन ग्रंथ एवं कुरान और हदीस में व्यापक मुद्दा एवं स्पष्ट रूप से विचार-विमर्श किया गया है ।

संतों की आधारभूत विचारधारा, इस्लाम धर्म के दर्शन पर आधारित है । इस्लाम धर्म में मानवतावाद को पूर्ण रूप से स्वीकार लिया गया है । प्रसिद्ध हदीस "कुल्लुन मुमिनुन इरब्बतुन" अर्थात् समस्त मोमिन आपस में भाई हैं, मानवतावाद को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करती है ।

संत दरिया साहब की रचना एवं दृष्टिकोण इस्लाम धर्म पर आधारित है । अतः अन्य संतों की भांति दरिया साहब की रचना में मानवतावादी दृष्टिकोण का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं । संतों में आरंभ से ही मानवतावादी

दृष्टिकोण दृष्टिगत होता है ।

मानवतावाद के विषय में डॉ० मोहम्मद अहसन साहब का विचार है कि " विश्व मानवता को किसी भी जातीय साँस्कृतिक तथा राजनीतिक सीमाओं से ऊपर उठकर विवेक के माध्यम से मानवीय सम्बन्धों के अनुसार देने के सिद्धांत का नाम मानवतावाद है ।"¹

डॉ० सावित्री शुक्ला ने मानवतावाद का मूल सिद्धांत बताते हुए, मानवतावाद को इस प्रकार व्याख्यापित किया है : " मानवतावाद का आधारभूत मूल सिद्धांत है, समस्त प्राणियों को "आत्मा" से भिन्न न समझना । समस्त जीवों में दया भाव का समान रूप से प्रसार करना । सबकी दुःख की अनुभूति को आत्मानुभूति बनाना । इसका प्रमुख कारण यह है कि सबका रक्षयिता एक ही है । एक ही अंश के सब अंश हैं । फिर मानव-मानव के बीच यह विरोध कैसा । न कोई बड़ा है, न कोई छोटा । न कोई ऊँचा है , न कोई नीचा । सबमें एक ही आत्मा का प्रसार, सब एक ही कृपाकार की कृतियाँ हैं । एक ही ईश्वर ने सबको जन्म दिया है । सब समान हैं । जातिपाँति का भेदभाव नहीं होना चाहिए ।"²

सैत दरिया साहब ने भेदभाव को मिटाकर समन्वय के माध्यम से मानवतावाद का सूत्रपात किया है । उनकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान सब एक हैं । इनमें परस्पर कोई भेद नहीं है । इस संबंध में दरिया सागर की पंक्तियाँ प्रष्टुठ्य हैं :

॥१॥ डॉ० मुहम्मद अहसन, निर्गुण संत कवियों का मानवतावाद पृ० 47

॥२॥ डॉ० सावित्री शुक्ला, संत साहित्य की सामाजिक एवं साँस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ० 250

" हिन्दू तुम्हें हम एकै जाना । जो एह मानै सब्द निसाना ।

× × × × × × × ×

× × > × × × × × ×

अन पानी सब एकै होई । हिन्दू तुम्हें दूजा न कोई ।।"¹

संत दरिया साहब का मत है कि जन्म और जाति-पाँति का

मेदभाव व्यर्थ है । केवल सत्त नाम ही सर्वत्र सत्त है । जाति पाँति के विषय में इस प्रकार की स्वच्छंद विचारधारा मानवतावाद की पोषक है :

" जनेऊ सठ एक सत्तनामा ।

जनम जाति एह व्यर्थ कैकाना ।।"²

संतों के मानवतावादी दृष्टिकोण पर विचार करते हुए डॉ० अहसन

ने इसका विस्तृत विवेचन किया है : "निर्गुण संत साहित्य भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है । इसलिए इसमें प्रस्तुत नव सामाजिक विधान में स्वीकृत मानवीय दृष्टिकोण निश्चय ही भारतीय चिन्तन का अनुसरण कर रहा है क्योंकि नितान्त भ्रष्ट, पतित और विश्रुंखल समाज में सबसे बड़ी आवश्यकता ऐसी ही चिन्तन धारा के मानने वाले संतों की थी जो ईश्वर, प्रकृति, मनुष्य और समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक संस्था के सम्बन्ध में सत्यता को जोर देकर व्यक्त कर सके । जो बिना किसी द्वेष एवं हिंसा के ,स्वर्ग के देवताओं और पृथ्वी के देवताओं की निर्भीकतापूर्वक पोल खोल सकें जो विश्वात्मा अथवा इतिहास नियामक परमात्मा से पीड़ित मनुष्यों के प्रति संवेदना जगाने और अत्याचारियों के नाश करने की अपील कर सकें । जो

॥१॥ दरिया साहब ॥बिहार वाले॥, दरिया सागर, पृ० 27

॥२॥ --- वही ---

हर क्षेत्र में व्याप्त पाखंड, क्रूरता, असमानता और शोषण का खंडन कर सकें । जो पूंजी का सीधे-सादे विरोध कर सकें । जो दूसरे की पत्नी, दौलत और भौतिक सेवा की लालसा को त्याग देने पर जोर दे सकें । और दूसरों के अधिकारों की स्वेच्छा से मान्यता देने पर बल दें । संतों ने यह सब स्वयं अपनी बानियों में वर्णित किया है । उन्होंने सत्य और अहिंसा के लिए धार्मिक कट्टरता और आध्यात्मिक दासता के विरुद्ध लड़ाई के लिए लोगों को दीक्षित किया । सीप में संतों ने अपने मानवतावादी आंदोलन द्वारा भारतीय जनमानस की जनसेवा, ऐक्य में विश्वास, और समानता का पाठ पढ़ाया है ।”

संतों द्वारा प्रयुक्त आधारभूत मानवतावादी दृष्टिकोण संत दरिया साहब के दरिया सागर में विशेष रूप से व्याप्त है । उन्होंने संतों की परम्परा से लेकर किसी भी स्थान पर मानवतावादी दृष्टिकोण की पुष्टि के अतिरिक्त अन्य कोई बात नहीं की । संतों का मूल दृष्टिकोण मानवतावाद के रूप में दरिया सागर में विशेषकर मुखरित हुआ है ।

॥२॥ बाह्याडम्बरों और हुआछूत सम्बन्धी दृष्टिकोण

संत दरिया साहब [बिहार वाले] ने अपनी रचना दरिया सागर में बाह्याडम्बरों का ठुकर विरोध किया है ।

संत दरिया साहब का विचार है कि तितक लगाने या पत्थर पूजने से मानव जाति को बढ़ाई प्राप्त नहीं हो सकती :

" ऐ बड़े नाहिं होहि बड़ाई ।

पत्थर पूजि जो-तितक लगाई ॥"¹

संत दरिया साहब ऐसे मनुष्य को पंडित अथवा ज्ञानी स्वीकार करते हैं जो बाह्याडम्बर से वंचित और आंतरिक सेव्य भावना से परिपूर्ण हो :

" पंडित सो जो मनु समुझावे ।

मन ही मन कै पूजा चढ़ावे ॥"²

परमसत्ता को प्राप्त करने हेतु बाह्याडम्बरों से युक्त जोबी-घुंठित, मुंठित सन्यासी हत्यादि विचार करते-करते एवम् प्रयत्नशील रहते हुए थक गए, किन्तु उन्हें "सत्त" शब्द की प्राप्ति नहीं हुई क्योंकि सत्त तो केवल आन्तरिक भावनाओं से प्राप्त होता है , यह बाह्याडम्बरों से सर्वधामुक्त एवं परे है :

" जोगी जोग करत सब हारे, अवरि करेको तनकै चारे ।

तपी और सन्यासी हारे, घुंठित - मुंठित करे विचारे ।

जंगम जोगि रहे सब हारी , एक नाम निष्ठु शब्द पुकारी ॥"³

संत दरिया साहब [बिहार वाले] ने जाति-पाँति तथा ऊँचीच की भावना को दूर कर एकता उत्पन्न करने में अपना समस्त जीवन समर्पित किया । उनका विचार है कि ब्रह्म जातिपाँति को नहीं देखता । वह समस्त प्राणियों के पद में समान रूप से रहता है । वह कीट पतंगों तक में व्याप्त है :

॥1॥ दरिया साहब [बिहार वाले], दरिया सागर, पृ० 16

॥2॥ — वही — पृ० 21

॥3॥ — वही — पृ० 19

कीट पतंग सबन्हि ठयापै । ई सब बिन्हूह ज्ञान निष्ठु आवै ॥”

सत्त गु का बखान करसै हए संस दरिया साहब कहसै हैं कि सत्त गु की कोई जाति नहीं होती । जिस प्रकार सताएँ वृक्षों में बिना किसी भेदभाव के उलझी रहती हैं , उसी प्रकार जातिर्पाति से परे सत्त गु भी अपने ज्ञान का दान अपने शिष्यों को बिना किसी भेदभाव के करता है । उसकी दृष्टि में जातिर्पाति की कोई उपयोगिता नहीं है :

" जैसे तता दुर्म में , अग्नि रहा बहु भति ।

सत्त गुरु मति नहिं जानही , अपनी-अपनी जाति ॥²

संत दरिया साहब जातिपाँति का विरोध करते हुए कहते हैं कि हमें सत्त प्राप्त के लिए जातिपाँति की संकीर्णता को त्याग देना चाहिए । यदि हम सत्त की प्राप्ति चाहते हैं , तो हमें बिना किसी भेदभाव के सत्त को ग्रहण करना चाहिए :

" सत्त गुण पाति - पाति नहिं लोषे ।

ਯਾਤਿ ਭੀਜੇ ਤੇਹਿ ਪਾਤਕ ਭੀਜੇ ॥"3

ब्राह्मण जाति पर कटाक्ष करते हुए दरिया साहब कहते हैं कि स्वयं

॥॥ दरिया साहब ॥ बिहार वाले ॥, दरिया सागर, पृ० ३०

121 — वही —

50 21

131 — वही —

50 46

को अच्छे कुल का बताने वाला अथवा अपनी जातिगत बढ़ाई का बखान करने वाला, घर में वैश्या रहता है, मांस भक्षण का विरोध करता है किन्तु मांस खाने वाली नारी का मुख घूमता है । झूठ बोलता है , किन्तु सदैव जेठ धारण किए रहता है :

" अपने ब्रह्मन विस्नो होई , घर में साक्ठ मेहिर सोई ॥

मांस खाय संग सूतै जाई । जाको मुख चूमै गहि जाई ॥

कहत फिरै हम बड़ा कुलीना । घर में तुलकिनि नाहीं चीन्हा ॥

झूठ कहै सब झूठ सुनावै । नौ गुन काँध जेठें नावै ॥ " १

शंत दरिया साहब हिन्दू और मुसलमान को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से फटकारते हैं । उनका विचार है कि यदि मुसलमान गाय का भक्षण करते हैं, तो हिन्दू भी हिरन का भक्षण करता है । दोनों का रक्त एक है, किन्तु भाई-भाई नहीं अथवा दोनों में एक दूसरे के प्रति प्रेम नहीं है :

" हिन्दू तुलक हमि दूनो भुलाना । दोनों ही बादि ही बादि बिलाना
बोहरिनी वो गाइहि छाई।तोहु एक दूजा नहिं भाई ॥" २

शंत दरिया साहब ने अपने समाज सम्बन्धी दृष्टिकोण के अंतर्गत बाह्याढम्बरों, जातिपाँति, छुआछूत, जैवनीय आदि का सुलकर विरोध किया है । उन्होंने ऐसे समाज का निर्माण करने का प्रयत्न किया है जिसका केन्द्रबिन्दु मानवतावाद है ।

॥१॥ दरिया साहब ॥बिहार वात्से॥, दरिया सागर, पृ० 45

॥२॥ --- वही ---

॥३॥ दरिया सागर में परमसत्ता एवं ईश्वर का स्वप्न

मुसलमान होने के कारण दरिया साहब का ईश्वर की परमसत्ता और ईश्वरवाद के सम्बन्ध में इस्लामिक दृष्टिकोण होना स्वभाविक है । निःसंदेह संतों का मूल दृष्टिकोण मानवतावादी था। किन्तु इस दृष्टिकोण से भी ऊपर आधारभूत दृष्टिकोण इस्लाम की मान्यताओं एवं ईश्वर की परमसत्ता और ईश्वरवाद के संबंध में स्पष्ट दृष्टिकोण था । इसी दृष्टिकोण के आधार पर दरिया साहब ने दरिया सागर में ईश्वरवाद एवं ईश्वर की परमसत्ता का पूर्णरूपेण वर्णन किया है ।

इस्लाम धर्म के अनुसार ईश्वर तामकाँ है, अर्थात् जिसकी कोई सीमा नहीं एवं वह दृष्टि से परे है । इसी विचार को लेकर दरिया साहब ने दरिया सागर में विभिन्न स्थानों पर छपलोक की बात की है :

" बेद विधि नहिं करेउ बखाना ।

छपलोक साहब अस्थाना ॥ "।

इस्लाम में इस्लाम अथवा निर्गुण विचारधारा के अनुसार ईश्वर का कोई रूप नहीं है । इसी तथ्य को उजागर करते हुए दरिया साहब ने कहा है :

" अनंत लोचन सम जानी होई ।

अगम रूप कहि सकै कोई ॥ "2

सात्पर्य यह कि भगवान के अगम-अगोचर रूप का बखान करना अत्यंत कठिन है । दरिया साहब का विचार है कि ईश्वर-रूप-वर्णन अत्यंत कठिन है । वह

॥१॥-॥२॥ दरिया साहब बिहार वाले॥, दरिया सागर, पृ० ।

मन में किसी और रूप में विराजता है । किन्तु दृष्टिगत किसी और रूप में होता है :

“ उन्हें कर रूप कहा नहिं जाई ।

मन मेंह सकुच लगे कहु भाई ॥”¹

इस्लाम की दृष्टि में ईश्वर नूर अर्थात् ज्योति है । सुफियों अथवा संतों ने इसी ज्योति से समस्त संसार का निर्माण स्वीकार किया है । दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि समस्त प्रकृति में स्वयं ईश्वर के तत्त्व ही विद्यमान हैं । दरिया साहब इसी दृष्टिकोण के आधार पर कहते हैं कि उसी परमसत्ता ने अपनी ज्योति से तीनों लोकों अर्थात् आकाश, धरती, पाताल का निर्माण किया है :

“ तनिक उँकार ज्योति के कीन्हा ।

तीनि लोक जोती रचि लीन्हा ॥”²

सुफियों अथवा संतों में व्याप्त परमसत्ता अथवा ईश्वर संबंधी यह दृष्टिकोण भारतीय वैदिक प्रभाव को देन है क्योंकि यदि हम विशुद्ध इस्लामिक दृष्टिकोण अथवा कुरआन के आधार पर इस संबंध में अध्ययन करते हैं, तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि अल्लाह ने मात्र “कुन” शब्द कहकर समस्त सृष्टि का निर्माण किया । अल्लाह ने “कुन” शब्द अर्थात् “हो जा” कहा और समस्त सृष्टि की रचना हो गई । इस संबंध में कुरआन शरीफ में “कुन फ्याकून” अर्थात् “हो जा, बस हो गया” का अनेक स्थानों पर बखान दिया गया है ।

॥१॥ दरिया साहब॥ बिहारवाले॥, दरिया सागर, पृ० ।

॥२॥ — वही —

पृ० ।

यहाँ ईश्वर की ज्योति से तीनों लोकों के निर्माण की बात कहकर दरिया साहब ने ईश्वर की परमसत्ता को सर्वोपरि स्वीकार किया है क्योंकि किसी भी वस्तु का निर्माता ही उस वस्तु पर परमसत्ता के रूप में छाया रहता है । इसलिए कि अमुक वस्तु तो स्वयं उसी द्वारा निर्मित है, अर्थात् उसका परम स्वामी अथवा सर्वोपरि है ।

कुरआन में जहाँ अल्ताह के 99 विशेषणात्मक नामों का बखान किया गया है उनमें अल्ताह के तेजस्वी रूप का भी वर्णन किया गया है । ईश्वर का यह तेजस्वी रूप उसकी परमसत्ताका चोख है ।

दरिया साहब ने इस ग्रंथ में ईश्वर के इसी तेजस्वी रूप का वर्णन किया है । उनका विचार है कि उस तेजस्वी ईश्वर की तनिक दृष्टिमात्र से समस्त पापों का समाधान हो जाता है :

" जोवन तेज कहा नहीं जाई ।

तनिक दृष्टि सब पाप कटाई ॥"।

उपर्युक्त पंक्तियों में दरिया साहब का यह दृष्टिकोण पूर्ण रूप से सत्यकता है कि उस परमसत्ता अर्थात् ईश्वर की दृष्टिमात्र से समस्त कासिमा का समा-पन, वस्तुतः उसकी परमसत्ता एवं सर्वशक्तिमान जैसी विशेषताओं का पुरक है ।

संतों के एकेश्वर के संबंध में दृष्टिकोण का मूल रूप से तात्पर्य यह है कि वह ही एव ईश्वर समस्त प्रकृति का स्वामी है । उसकी सत्ता सर्वोपरि है । वह

सर्वसर्वा है । यदि संत ईश्वर के इस रूप का ~~का~~ बखान नहीं करते तो द्वैतवाद की भांति ईश्वर की शक्तियां विभिन्न देवताओं में विभक्त हो जातीं । संत दरिया साहब ने एक ईश्वर की ख़्बात कर इस दृष्टिकोण की पुष्टि की है कि जब ईश्वर एक ही है तो समस्त शक्तियां उसी में निहित हैं क्योंकि वह सर्वापरि है । यदि कोई और दूसरा होता तो शक्तियों के विभाजन की कल्पना की जा सकती थी । जब ईश्वर एक है तो उसका सर्वशक्तिमान, सर्वापरि एवं परमसत्ता के रूप में होना स्वभाविक एवं युक्तिसंगत है । दरिया साहब ईश्वर का बखान कर उसके परमशक्तिमान होने की पुष्टि करते हैं :

" नादि अंत सत्त पुःपे अमाना ।

बह्य एक है सब पट जाना ॥"¹

संत ~~अखिर~~ दरिया साहब का विचार है कि उस अनंत ईश्वर अथवा परमसत्ता की खोज ही मानव मात्र का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए । तात्पर्य यह है कि यदि हम उस परमसत्ता को खोजने में सफल हो गए तो समस्त सृष्टि स्वयं ही हमारी खोज में आ जाएगी :

" अनंत नाम सब कहत हैं , एक नाम परनाम ।

एक नाम ओह पुरुष का , ताहि खोजु निषधाम ॥"²

दरिया सागर के मंथन से जो ईश्वर की परमसत्ता और ईश्वरवाद के अमूल्य मोती प्राप्त होते हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि संतों के इस

॥१॥ दरिया साहब ॥ बिहार वाले ॥, दरिया सागर, पृ० 6

॥२॥ — वही —

पृ० 8

परमसत्ता एवं ईश्वरवादी दृष्टिकोण का बीज इस्लाम के धार्मिक दृष्टिकोण पर आधारित है किन्तु संतों की यह धार्मिक दृष्टिकोण स्वी ज्योति कहीं-कहीं संतों की मानवतावादी दृष्टिकोण स्वी घन-घटाओं में छिपकर रह गई है । अन्य संतों के समान दरिया साहब ने भी मानवतावाद के आधार पर अथवा भारतीय वैदिक परम्परा से प्रभावित होकर अपना दृष्टिकोण कहीं-कहीं बदल दिया है । उदाहरणार्थ, प्रकृति की उत्पत्ति के संबंध में दरिया साहब का दृष्टिकोण अन्य संतों के समान विशुद्ध इस्लाम धर्म पर आधारित न होकर भारतीय संत परंपराओं पर आधारित है।

॥४॥ दरिया सागर में वर्णित धार्मिक विचार

संतों का साहित्य जनसाधारण का साहित्य है । इसमें संतों ने जनसाधारण के सामने अपने विचारों का काव्य के माध्यम से बखान किया ।

दरिया साहब ॥बिहार वाजे॥ संत परम्परा का पूर्ण अनुसरण करते हैं । उन्होंने संतों के धार्मिक दृष्टिकोण एवं विश्वास का पूर्ण पालन किया है ।

दरिया साहब ने दरिया सागर में धार्मिक दृष्टिकोण एवं विश्वास को पूर्णरूपेण प्रदर्शित किया है । इस ग्रंथ के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दरिया साहब एकेश्वरवादी, परमतत्त्ववादी एवं सर्वव्यापी भगवान के प्रति श्रद्धालु रहे । उनके भगवान का स्वयं एकेश्वर, परमसत्त एवं सर्वव्यापी आदि है । उन्होंने जीव एवं आत्मा के संबंध में कहीं-कहीं अद्वैत का प्रदर्शन किया है । उनके ब्रह्म एवं जीव का तादात्म्य बना रहता है । संकर से प्रभावित होने के कारण माया को ठगनी एवं

सर्पिणी रूपों में दर्शाया है । मन और माया का इस दृष्टि से पूर्ण उल्लेख किया है । धार्मिक विश्वास के अंतर्गत आलोच्य ग्रंथ में अन्य संतों की भांति मानवतावादी दृष्टि-कोण के पूर्ण दर्शन होते हैं । उन्होंने मानव धर्म एवं सहज धर्म का पूर्ण वर्णन किया है । विषय की रुचि एवं उपयोगिता के आधार पर उपर्युक्त धार्मिक दृष्टिकोण एवं धार्मिक विश्वास के अंतर्गत आने वाले पदों के उदाहरण सूची में प्रस्तुत करना अनिवार्य है :

ईश्वर के ऐक्यवादी स्वल्प का वर्णन दरिया साहब में नहीं अपितु समस्त संत काव्य में दृष्टिगत होता है । दरिया साहब ने ईश्वर के ऐक्यवादी स्वल्प का वर्णन किया है । एक स्थान पर इस विषय से संबंधित उनके विचार प्रष्टब्ध हैं :

“ एकै सौ अनंत भौ , फूँटि डारि विस्तार ।

अतहूँ फिर एक है , ताहि सोजू निजसार ॥”¹

दरिया साहब का विचार है कि वह परमसत्ता अनंत है । समस्त प्रकृति उसका विस्तार मात्र है । अंत में सब उसी में विलीन हो जाना है । उसी एक की सोज परमावश्यक है ।

इस्लाम धर्म के अनुसार अल्लाह एक नूर है और उसने उसी नूर के कण मात्र से समस्त सृष्टि की रचना की है । यह विचारधारा सुफियों के उस सम्प्रदाय में भी दृष्टिगत होती है जो ईश्वर को सूर्य एवं समस्त प्रकृति को उसकी किरणों से उद्दीप्त मानते हैं ।

दरिया साहब के एकेश्वरवादी दृष्टिकोण को सशक्त बनाने एवं प्रदर्शित करने हेतु उनकी वह काव्य पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं , जिनमें उन्होंने ईश्वर को आदि-अंत एवं प्रत्येक घट में उसी एक ईश्वर के दर्शन किए हैं :

" आदि अंत सत पुरुष अमाना ।

ब्रह्म एक है सब घट जाना ॥"¹

इसी प्रकार बारम्बार दरिया साहब उसी ईश्वर आदि और अंत की बात कर अपने दृष्टिकोण को सशक्त बनाते हैं । उन्हें प्रत्येक घट में एक ही परम सत् ब्रह्म के दर्शन होते हैं ।

दरिया साहब का विचार है कि उसी एक आदि से अंत तक के सर्वशक्तिमान की खोज ही सब कुछ है । उसी की खोज से कुछ प्राप्त हो सकता है । उसी की खोज एवं प्राप्ति से समस्त कष्टों का निवारण हो सकता है :

" अनंत नाम सब कहत हैं, एक नाम परनामन ।

एक नाम ओहि पुरुष का ताहि खोजु निज धामन ॥

अनंत एक से होत है, सास पब तख भूल ।

बहुरि एक जब खोजिए, तब भेटे सब सुल ॥ "²

दरिया साहब केवल उस परमसत्ता की खोज की ओर संकेत करके ही आगे नहीं बढ़ जाते , वह खोजने वाले को उस स्थान के विषय में भी

॥१॥ दरिया साहब॥ बिहार वाले॥, दरिया सागर, पृ० 7

॥२॥ ——— वही ———

पृ० 8

बताते हैं , कि उसका निवास स्थान कहाँ है :

" वेद विधि नहीं करउ बखाना ।

छप लोक साहब अस्थाना ॥"¹

अन्य स्थान पर वे कहते हैं :

" तीन लोक जम दाखन अहई ।

चौथे लोक पुरुष वह रहई ॥"²

इसी चौथे लोक के विषय में एक और स्थान पर दरिया सागर की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :

" ओह तो सत्त पुरुष अस्थाना ।

चौथ लोक जहँ भय नहीं जाना ॥"³

"दरिया सागर" में स्थान-स्थान पर ईश्वर के मूल स्थान "छपलोक" का वर्णन किया गया है । इस छपलोक को दरिया साहब ने चौथा लोक भी बताया है । उनका विचार है कि तीन लोकों का तो बखान वेदों आदि में किया ही गया है, चौथा लोक वह है जहाँ "साहब" अर्थात् "ईश्वर" निवास करता है । छपलोक की बात इस्लाम धर्म का ईश्वर विषयक आधारभूत दर्शन है । ईश्वर के विषय में यही कहा जाता है कि वह "लामकों" में रहता है । "लामकों" से तात्पर्य ऐसा मकान है जो न होते हुए भी स्थित रहता है । अरबी भाषा में "ला"काअर्थ "नहीं" और मकान का

॥१॥ दरिया साहब॥बिहार वाले॥,दरिया सागर,पृ० ।

॥२॥ --- वही --- पृ० 6

॥३॥ --- वही --- पृ० 8

।मर्का। का अर्थ घर है । दरिया साहब भी "छपलोक" अर्थात् गुप्त अथवा छुपे "लोक" की बात करते हैं, जो पूर्णरूपेण इस्लाम दर्शन पर आधारित है ।

निर्गुण विचारधारा तो संतों में मूल रूप से विद्यमान है । दरिया सागर से इस विषय में उदाहरण प्रस्तुत करना कोई आश्चर्य की बात नहीं फिर भी उदाहरणार्थ दो पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

" सुनहु ज्ञान गति कंठ उवारा ।

निर्गुन की गत अगम अपारा ॥"¹

यहाँ दरिया साहब ईश्वर के निर्गुण रूप की वर्णा करते हुए अपने ईश्वर की अगम और अपार जैसी शक्तियों का भी स्पष्ट बखान करते हैं :

" अनंत लोचन सम ज्ञानी होई ।

अगम रूप कहि सके न कोई ॥"²

आदि एवं अंत रूप का बखान करते हुए दरिया साहब का विचार है :

" नव लक्षकर जाके है माथा ।

आदि अंत सुफिरिति है साधा ॥"³

ईश्वर ने तीन गुणों के मिश्रण मात्र से मनुष्य में मानवता को उजागर किया है । दरिया साहब का मत है कि इन तीनों गुणों में भी उसका गुण

।।। दरिया साहब।बिहार वाले।, दरिया सागर, पृ० ९

।2। — वही — पृ० ।

।3। — वही — पृ० ।

न्यारा है । वह अजर-अमर और सत्त है :

“ तिरगुन ते ओइ गुन न्यारा ।

अजर-अमर हइ संत करतारा ॥”¹

इसी प्रकार दरिया साहब ईश्वर के निर्गुण ऐकेश्वरवादी रूप की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं । उसे परम् शक्तिमान, आदि से अंत तक, अजर, अमर आदि विशेषणों से णद करते हैं ।

॥5॥ दरिया सागर में जीवन व्यवहार मूलक सामाजिक प्रतीक

संत-साहित्य में यदि कोई विशेषता काठ्य-यव की प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत होती है, तो वह है संतों का प्रतीक-विधान । संतों ने प्रतीकात्मक शैली का अनुसरण किया । उनका प्रतीक-विधान अत्यंत सुंदर एवं मनोहर है ।

दरिया साहब ॥बिहार वाले॥ के आलोच्य ग्रंथ दरिया सागर के अध्ययन से उनकी प्रतीक योजना का पता चलता है । उन्होंने जीवन व्यवहारमूलक प्रतीकों, साधनात्मक प्रतीकों, आत्मा-परमात्मा संबंधी प्रतीकों, ब्रह्म संबंधी प्रतीकों एवं माया संबंधी प्रतीकों को सफल रूप से योजनाबद्ध किया है । यहाँ दरिया सागर में प्रयुक्त केवल जीवन व्यवहारमूलक प्रतीकों एवं साधनात्मक प्रतीकों पर विचार किया जाएगा ।

जीवन व्यवहारमूलक प्रतीक

मनुष्य के सामाजिक जीवन में विभिन्न व्यवसायों का महत्व है ।

यह व्यवसाय मनुष्य की सामाजिक उपलब्धियों के चोकर हैं । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं - जीवन-यापन हेतु समाज में मानव द्वारा अपनाए गए व्यवसायों को आध्यात्मिक धरातल पर जिन-जिन शब्दों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है उन शब्दों को जीवन व्यवहारमूलक प्रतीक कह सकते हैं । यह व्यवसाय एवं व्यवसायिक दोनों के माध्यम से प्रदर्शित किए जा सकते हैं । संत-साहित्य के प्रबुद्ध विद्वान डॉ० मुहम्मद अहसन के अनुसार "इस वर्ग में वे प्रतीक आते हैं जिनका प्रयोग किसी व्यवसाय, उसके अंग अथवा व्यवसायी को प्रतीकत्व प्रदान करके किया गया है और जो जनजीवन के विविध क्षेत्रों से लिए गए हैं जिनमें - जुलाहा, कसाई, बंजारा, कुम्हार, बढ़ई, लोहार, सुनार, धोबी, भील, व्यापारी इत्यादि ऐसे ही व्यवसायी हैं जिनका प्रतीक रूप में प्रयोग हुआ है । इन व्यवहारमूलक व्यवसायों के साथ ही साथ उनके व्यवसायिक कर्म के उपादानों को भी प्रतीकत्व प्रदान किया गया है । जैसे जुलाहा कर्म से संबंधित चरखा, सूत बढ़ईगीरी से संबंधित लकड़ी, लुहार की धौकनी से हथौड़ा, कुम्हार का क्रमादि, भील के तरि-कमान आदि ।"।

दरिया साहब ने उपर्युक्त भाव से ओतप्रोत व्यवहारमूलक प्रतीक योजना का अनुसरण कर संतों की परम्परा का पूर्ण पालन किया है । दरिया साहब ने मन की धँसलता को सर्वाधिक बाधक बताया है । उन्होंने संतों के इस दृष्टिकोण का पूर्ण अनुसरण किया है कि जीवन-व्यवसाय के समस्त उपादान मूलतः लौकिक ही हैं ।

दरिया सागर में प्रयुक्त जीवन व्यवहारमूलक प्रतीक उदाहरणार्थ द्रष्टव्य हैं :

छेता : ओह निर्लेप माया नहिं होता । एह तिरगुन हैबीज जो छेता । ¹

कियारी : तत्तु कियारी जोत किसाना । तुतहिं गहै सबद निर्बाना ॥ ²

किसान : आवै जाय जगत् करि अपना । ज्यों किसान छेता का बतना ॥ ³

सम्स्त संत साहित्य एक प्रकार से साधनात्मक साहित्य है । यदि यह कहा जाए कि संतों के काव्य की प्रत्येक पंक्ति हठयोग अथवा सिद्धों के साधनात्मक विचारों से परिपूर्ण है तो अत्युक्ति न होगी ।

दरिया साहब उच्च कोटि के संत कवि हैं । अतः उनके काव्य का साधनात्मक होना स्वभाविक है । दरिया सागर का अध्ययन करने के पश्चात् दृष्टिगत होता है कि इस ग्रंथ में जीवन-व्यवहारमूलक एवं अन्य अनेक प्रकार की शब्दावली का प्रयोग सूक्ष्म रूप में हुआ है । जहाँ एक ओर दरिया सागर में जीवन-व्यवहारमूलक एवं अनेक प्रकार की प्रतीकात्मक शब्दावली के सूक्ष्म रूप में प्रयोग हुआ है, वहीं दरिया साहब के विषय एवं संत-दर्शन से पूर्ण प्रभावित होने एवं संत कवि होने के कारण रचित रूप में साधनात्मक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है ।

सिद्धों के हठयोग एवं नाथों की हठयोगिक शब्दावली का दरिया साहब ने अन्य संतों के समान प्रयोग किया है । यही शब्दावली प्रतीकात्मक शब्दावली अथवा प्रतीक विधान कहलाती है ।

॥१॥ दरिया साहब, बिहार वाले, दरिया सागर, पृ० 6।

॥२॥ ——— वही ——— पृ० 36

॥३॥ ——— वही ——— पृ० 57

संतों में यह साधनात्मक प्रतीक विधान प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुआ है । संत-साहित्य के मनीषी डॉ० मुहम्मद अहसन के अनुसार, "आलोच्य संत कवियों की रचनाओं का बहुत बड़ा भाग साधनात्मक है । साधना के क्षेत्र में इन कवियों की देन अविस्मरणीय है । "

वस्तुतः संतसाहित्य साधनात्मक विचारों एवं प्रतीक विधान से परिपूर्ण है । दरिया साहब ने भी साधनात्मक प्रतीक-विधान के अंतर्गत आलोच्य ग्रंथ में सांकेतिक पारिभाषिक, संख्यामूलक एवं रूपात्मक प्रतीकों का प्रयोग किया है।

आलोच्य ग्रंथ में प्रयुक्त साधनात्मक प्रतीकों में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

सबद तसु कियारी जोत किसाना । तलुहि गहै सबद निर्वाना ॥^{* 2}

अनहद अनुभो अनुहद करे विचारा । सुधि परे तब उत्तरे पारा ॥^{2 3}

हंस सुन्न-सुन्न सब करे पुकारा । सुन्न न होखहिं हंस उबारा ॥^{3 4}

पवन हंगला पिंगला सुखमनि नारि । सार पवन तहँ करे पुकारी ॥⁵

मानसरवर तहँ हंस बसि मानसरवर , चुंगत सौ मन भावहीं ॥⁶

सुरति प्रथमहिं सत पद कीन्ह बजाना । प्रेम प्रीति ले सुरति समाना ॥⁷

[1] डॉ० मुहम्मद अहसन, संतसाहित्य में प्रतीक विधान, पृ० 118

[2] दरिया साहब [बिहार वाले], दरिया सागर, पृ० 36

[3] — वही — 23

[4] — वही — 51

[5] — वही — 3

[6] — वही — 35

[7] — वही — 1

निरति तामें निरति - सुरति बानी । तामें निरतु माया की बानी ॥¹

निरंजन एक निरंजन सभहिं जुलावे । बिन घान्हे कोइ मुक्ति न पावे ॥²

पांच पच्चीस तन साधत फिरि भये असाधी । पांच पच्चीस बहु कैसे बाँधी ॥³

गगन चौंद सुरज तहिं मनि उजियारा । नाहीं उगहिं गुगुन का तारा ॥⁴

आलोच्य ग्रंथ का अध्ययन इस बात का साक्षी है कि दरिया साहब के काव्य की आत्मा मुख्य रूप से साधनात्मक शब्दावली अथवा साधनात्मक दर्शन है । उन्होंने इस संदर्भ में संतों में प्रयुक्त साधनात्मक परम्परा का पूर्ण अनुसरण किया है ।

संतों द्वारा स्वीकृत सामाजिक दृष्टिकोण का पूर्ण अनुसरण करते हुए दरिया साहबनेउन समस्त सिद्धांतों को स्वीकार किया है । उन्होंने अन्य संतों के समान समाज में फैली बुराइयों का पूर्ण बहिष्कार किया । जातिभेद, भुआहुत एवं बाह्याढम्बरों का दृढ़ विरोध किया । जातिभेद के भेदभाव के स्थान पर उन्होंने यह भाव प्रदान किया कि ईश्वर प्रत्येक प्राणी के हृदय में समान रूप से निवास करता है । जो सेव्य भावना से परिपूर्ण है , उसी का उद्धार हो सकता है । ईश्वर-प्राप्ति हेतु माला-तिलक अथवा जोगी वस्त्रों के स्थान पर उन्होंने सेव्यभाव से ब्रह्म में लीन होने का उपदेश दिया है । उन्होंने जातिभेद की श्रृंखला को तोड़कर सत्त की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया । हिन्दू मुसलमान दोनों संस्कृतियों की बुराइयों की ओर उन्होंने संकेत ही नहीं किया, अपितु स्पष्ट रूप से उन्होंने जनसामान्य का

॥१॥ दरिया साहब॥ बिहार वाले॥, दरिया सागर, पृ० 3

॥२॥ — वही — पृ० 12

॥३॥ — वही — 37

॥४॥ — वही — ॥

इस ओर ध्यान आकर्षित कराया ।

दरिया साहब समस्त सामाजिक बाह्याढम्बरों जातिपाँति, छुआछूत आदि का विरोध कर ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें केवल मानवता की बात हो, जातिपाँति की नहीं । निःसंदेह मानवतावाद संतों का केन्द्र बिन्दु है । संतों ने अपने सुविचारों से जिस समाज की कल्पना की वह पूर्ण रूप से मानवतावाद पर आधारित था । सम्पूर्ण धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करके देखा गया है कि संतों ने मानवतावादी दृष्टिकोण का पूर्ण अनुसरण किया । उनके काव्य की आत्मा को यदि मानवतावाद क्री ही कहा जाए जो अतिशयोक्ति न होगी । इस मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रतिपादित करने एवं समाज को विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए संतों ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाया । दरिया साहब का काव्य इस समन्वयात्मक भावना से ओतप्रोत है ।

दरिया साहब का ब्रह्म के संबंध में अत्यंत स्पष्ट दृष्टिकोण मिलता है । उन्होंने इस्लाम दर्शन से प्रभावित होकर ब्रह्म को सर्वसर्वा एवं परमात्मा के रूप में स्वीकार किया । इसके साथ-साथ उन्होंने अपने काव्य में छपलोक की बात करके मुस्लिम दर्शन के "लामकों" के प्रभाव को स्वीकार किया । इसके अतिरिक्त ईश्वर की परमज्योति से तीनों लोकों की उत्पत्ति की बातकर वैदिक संस्कृति का प्रभाव दर्शाया है । मूल रूप से यह एकेश्वरवादी, परमतत्त्ववादी एवं सर्वव्यापी ब्रह्म के प्रति श्रद्धालु रहे। अन्य संतों के समान इन्होंने भी कहीं-कहीं एकेश्वरवाद के साथ-साथ औतवाद के

प्रभाव को भी स्वीकार किया है । इनके ज़हम एवं जीव में तादात्म्य बना रहता है । निर्गुण धारा से सम्बन्धित उदाहरण प्रस्तुत करना कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि कि दरिया साहब वस्तुतः निर्गुण धारा के ही कवि थे ।

अष्ट अध्याय : उपसंहार

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

संत दरिया साहब बिहारवाले! पर अभी तक बहुत कम कार्य हुआ है । इस गंभीर विषय पर महत्वपूर्ण अन्वेषण एवं शोध की आवश्यकता है । इसी आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में प्रस्तुत अध्ययन एक प्रयास है । संतों के साहित्य एवं दार्शनिक विचारधारा पर अनेक आचार्यों एवं शोधार्थियों ने कार्य किया है ।

दरिया साहब! बिहारवाले! पर धर्मन्द्र ब्रह्मचारी के किए गए कार्य सराहनीय हैं । ये कार्य दरिया साहब का परिचय प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होते हैं । दरिया साहब संबंधी कार्य का अपना महत्व है । ये संत संत-परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी हैं । दरिया साहब तक आते-जाते इस परम्परा में अनेक नवीन विचारों का समावेश हो गया था । इस दृष्टिकोण को सामने रखते हुए प्रस्तुत विषय पर शोध-कार्य करने का लघुतम प्रयास किया गया है । यह अध्ययन अत्यंत व्यापक एवं गंभीर है और इस पर अनेक कार्य होने की संभावनाएँ हैं इसलिए मैं अपना यह सौभाग्य ही मानता हूँ कि मैंने भी इस दिशा में कुछ योगदान करने का प्रयास किया है ।

प्रस्तुत अध्ययन में निर्गुण संत-परम्परा और दरिया साहब संबंधी अध्याय के अन्तर्गत "निर्गुण" और "संगुण" शब्दों पर विचार करके संतों द्वारा प्रयुक्त

"संत" शब्द पर अपनी दृष्टि से विचार प्रस्तुत किया गया है। संत-साहित्य पर विचार करते हुए विभिन्न विद्वानों ने संत-साहित्य का समय-निर्धारण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में भी लगभग उसी समय को आधार मानकर विचार किया गया है। थोड़ा-बहुत आवश्यकतानुसार परिवर्तन जहाँ अपेक्षित था वहाँ किया गया है।

अध्ययन में उस भक्ति-पद्धति का भी संकेत दिया गया है जो रामानुजाचार्य से होकर रामानन्द में विकसित होती हुई कबीर आदि की वाणी में मुखरित हुई है।

इस अध्ययन में आलोच्य कवि के जीवन से संबंधित समस्त पहलुओं पर विचार किया गया है। दरिया साहब का जीवन-परिचय विवादास्पद है। इनके नाम से लेकर जीवन-काल, जन्म-स्थान, परिवार एवं दार्शनिक विचार-धारा के विषय में कई विचार सामने आते हैं। इन विवादों के बीच से एक सीधी स्पष्ट आकृति के दर्शन कराने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन में बहिर्साक्ष्य का कम किन्तु अन्तःसाक्ष्य का अधिक आश्रय लिया गया है। अन्तःसाक्ष्य विश्लेषण-पद्धति वैज्ञानिक है जबकि बहिर्साक्ष्य में अनुमान-प्रमाण भर अधिक आधारित रहना पड़ता है। दरिया साहब संबंधी रचनाओं के विवाद को भी दृष्टि में रखकर अपना विचार प्रस्तुत करने का साहस किया है। रचनाओं का युक्तिसंगत परिचय भी दिया गया है।

विषय-केन्द्र— " दरिया सागर में चित्रित समाज" को ध्यान में रखकर "समाज" शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है । इस संबंध में विभिन्न समाज-शास्त्रियों के मत का विश्लेषण भी किया गया है । इससे इस शब्द की मूल धारणा तक पहुँचने में आसानी हो जाती है ।

संत-परम्परा पर व्यापक विचार प्रस्तुत करके उनके समाज-संबंधी दृष्टिकोण को दरिया सागर में चित्रित उच्च, मध्य एवं निम्न वर्गीय समाज की दृष्टि से विश्लेषित किया गया है । यह विश्लेषण अन्तःसाक्ष्य पर आधारित होने के कारण अनुमान-प्रमाण है हाँकर वैज्ञानिक बन सक्ता है ।

समाज के संबंध में दरिया साहब का दृष्टिकोण नितान्त मानवतावादी था । उन्होंने "असुखेव कुटुम्बकम्" और " " कुत्सुनमृषिन्नु इरव्वतुन" जैसे सूत्रों को स्वीकार कर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है । परम्परा से जुड़े होने के कारण उन्होंने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया । यह दृष्टिकोण संतों के समाज संबंधी दृष्टिकोण की दुरी है ।

दरिया सागर में ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानकर अद्वैत का अनुसरण किया गया है । किन्तु दरिया साहब का अद्वैत ब्रह्म निर्गुण होते हुए भी कहीं-कहीं सगुण मान्यताओं का भी आवेष्टित किए है । दरिया साहब का धर्म-संबंधी दृष्टिकोण भी व्यापक था । उन्होंने कर्म पर बल दिया , धर्म के बाह्य पक्ष के प्रति उनकी कोई विशेष आसक्ति नहीं थी ।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद , पटना सन् 1954 ई 0

हरिया गंगावती, भाग 2।

डॉ० धर्मेश्वर प्रहमवारी शास्त्री

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना 1962 ई0

दादू दयाल की बानी

केलवैठियर प्रेस, प्रयाग सन् 1963 ई0

हरिया साहब मारवाड़ वासे की बानी

केलवैठियर प्रेस, प्रयाग

हरिया सागर

हरिया साहब । बिहार वासे।

केलवैठियर प्रेस, प्रयाग

धर्मेश्वर अभिनन्दन गीत

सं० राम केसावन राय

वैठित प्रति

नानक बानी

सं० डॉ० जयराम मिश्र

मिश्रा प्रकाशन प्रा० लि० एलाहाबाद सं० 2018 वि०

निर्गुण संत कवियों का मानवतावाद डॉ० मुहम्मद अहमद

उत्कर्ष प्रकाशन, अमर कोट, अलीगढ़

पार्क वर्ग

इन्डोडेशन टू दि साइंस ऑफ सोसलाफी

वर्निपर

ट्रैवेल्स

प्रहल्लाद शर्मा

कहति प्रह नागरी कंभन वास । वैठित प्रति।

मुल्का साहब की बानी

केलवैठियर प्रेस, प्रयाग सन् 1910 ई0

मछहुरी की कहावतें

वाणी वितान वाराणसी सन् 1958 ई०

मेकावर

आई० बी० आर० सोसाइटी, लन्दन , 1950 ई०

रामचरित मानस

डॉ० माता प्रसाद गुप्त

हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद

रीतिकाव्य की भूमिका

डॉ० मोन्द्र

गीतम बुक डिपो, दिस ली सन् 1949 ई०

रीतिगुणीन काव्य

कृष्ण चन्द्र वर्मा

कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद , सन् 1969 ई०

संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि डॉ० ओम प्रकाश तर्मा

हिन्दुस्तानी ऐकेडमी , इलाहाबाद, सन् 1965 ई०

संत साहित्य में प्रतीक विधान

डॉ० मुहम्मद अहसन

भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ , सन् 1983

संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि डॉ० सावित्री गुप्ता

विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय सन् 1963 ई०

समाजवाद

डॉ० सम्पूर्णानन्द

भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् 1960

संत काव्य परमुराम चतुर्वेदी

किताब मस्त, इलाहाबाद [द्वितीय संस्करण] सन् 1961

संत साहित्य का पुनर्मूल्यांकन डॉ० रावदेव सिंह

आर्य बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली सन् 1973 ई०

संत बानी संग्रह भाग-1

केल्वेडियर प्रेस, प्रयाग [पाँचवा संस्करण] सन् 1950

संत मल्लूकदास की बानी

केल्वेडियर प्रेस, प्रयाग [तृतीय संस्करण] सन् 1946 ई०

सहजोबाई

सहज प्रकाशन, बम्बई 1994 वि०

संत बानी संग्रह भाग-2

केल्वेडियर प्रेस, प्रयाग सन् 1955 ई० [चतुर्थ संस्करण]

संत पलटू साहब की बानी

केल्वेडियर प्रेस, प्रयाग सन् 1929 ई०

सिद्ध सिद्धांत पद्धति

संवा० कल्याणी बोस [संशोधित प्रतिलिपि]

सुन्दर जंघावली

सं० हरि नारायण शर्मा

राजस्थान रिचर्स सोसाइटी, कलकत्ता, संवत् 1993

सुधन सुधान चरित

सुन्दरी तिलक

सूर सागर [पहला सं०] प्रथम स्कंध विनय संवा० श्री नंद दुबारी बाबू

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी [द्वितीय संस्करण] सं० 2009

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सन् १९९४